लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं
राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तं
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये॥ ३२॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥ ३३॥

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥ ३४॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥ ३५॥

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम्॥ ३६॥

जो सम्पूर्ण लोकोंमें सुन्दर, रणक्रीडामें धीर, कमलनयन, रघुवंशनायक, करुणामूर्ति और करुणाके भण्डार हैं उन श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरण लेता हूँ॥ ३२॥ जिनकी मनके समान गति और वायुके समान वेग है, जो परम जितेन्द्रिय और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं उन पवननन्दन वानराग्रगण्य श्रीरामदूतकी मैं शरण लेता हूँ॥ ३३॥ कवितामयी डालीपर बैठकर मधुर अक्षरोंवाले 'राम-राम' इस मधुर नामको कूजते हुए वाल्मीकिरूप कोकिलकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ३४॥ आपत्तियोंको हरनेवाले तथा सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रदान करनेवाले लोकाभिराम भगवान् रामको बारंबार नमस्कार करता हूँ॥ ३५॥ 'राम-राम' ऐसा घोष करना सम्पूर्ण संसारबीजोंको भून डालनेवाला, समस्त

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर॥ ३७॥
राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥ ३८॥

इति श्रीबुधकौशिकमुनिविरचितं श्रीरामरक्षास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

३८—श्रीब्रह्मदेवकृता श्रीरामस्तुतिः

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं
त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम्।
हेयाहेयद्वन्द्वविहीनं परमेकं
सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम्॥ १॥

सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति करानेवाला तथा यमदूतोंको भयभीत करनेवाला है॥ ३६॥ राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीरामजी सदा विजयको प्राप्त होते हैं। मैं लक्ष्मीपति भगवान् रामका भजन करता हूँ। जिन रामचन्द्रजीने सम्पूर्ण राक्षससेनाका ध्वंस कर दिया था, मैं उनको प्रणाम करता हूँ। रामसे बड़ा और कोई भी आश्रय नहीं है। मैं उन रामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा चित्त सदा राममें ही लीन रहे; हे राम! आप मेरा उद्धार कीजिये॥ ३७॥ (श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कहते हैं—) हे सुमुखि! रामनाम विष्णुसहस्रनामके तुल्य है। मैं सर्वदा 'राम, राम, राम' इस प्रकार मनोरम राम-नाममें ही रमण करता हूँ॥ ३८॥

ब्रह्माजी बोले—जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी स्थितिके कारण, आत्मज्ञानियोंद्वारा हृदयमें ध्यान किये जानेवाले, त्याज्य और ग्राह्यरूप द्वन्द्वसे रहित, सबसे

प्राणापानौ निश्चयबुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा
छित्त्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान्।
पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तं
वन्दे रामं रत्नकिरीटं रविभासम्॥ २॥

मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं
मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम्।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं
वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम्॥ ३॥

भावाभावप्रत्ययहीनं भवमुख्यै-
र्योगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम्।

परे, अद्वितीय, सत्तामात्र, सबके हृदयमें विराजमान और साक्षीस्वरूप हैं उन आप भगवान् विष्णुदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १॥ मोहहीन संन्यासीगण निश्चित बुद्धिके द्वारा प्राण और अपानको हृदयमें रोककर तथा अपने सम्पूर्ण संशयबन्धन और विषय-वासनाओंका छेदनकर जिस ईश्वरका दर्शन करते हैं, उन रत्नकिरीटधारी, सूर्यके समान तेजस्वी भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २॥ जो मायासे परे, लक्ष्मीके पति, सबके आदिकारण, जगत्के उत्पत्तिस्थान, प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे परे, मोहका नाश करनेवाले, मुनिजनोंसे वन्दनीय, योगियोंसे ध्यान किये जानेयोग्य, योगमार्गके प्रवर्तक, सर्वत्र परिपूर्ण और सम्पूर्ण संसारको आनन्दित करनेवाले हैं, उन परम सुन्दर भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३॥ जो भाव और अभावरूप दोनों प्रकारकी प्रतीतियोंसे रहित हैं तथा जिनके युगलचरणकमलोंका योगपरायण शंकर आदि पूजन

नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यं
वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम्॥ ४॥
त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी
मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी।
भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी
योगाभ्यासैर्भावितचेतःसहचारी ॥ ५॥
त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशं
लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम्।
भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयं
वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम्॥ ६॥
को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं
मायासक्तो माधव शक्तो मुनिमान्यम्।

करते हैं और जो नित्य, शुद्ध, बुद्ध और अनन्त हैं, सम्पूर्ण दानवोंके लिये दावानलके समान उन ओंकार नामक वीरवर रामको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४॥ हे राम! आप मेरे प्रभु हैं और मेरे सम्पूर्ण प्रार्थित कार्योंको पूर्ण करनेवाले हैं, आप देश-कालादि मान (परिमाण) से रहित, नारायणस्वरूप, अखिल विश्वको धारण करनेवाले, भक्तिसे प्राप्य, अपने स्वरूपका ध्यान किये जानेपर संसार-भयको दूर करनेवाले और योगाभ्याससे शुद्ध हुए चित्तमें विहार करनेवाले हैं॥ ५॥ आप इस लोक-परम्पराके आदि और अन्त (अर्थात् उत्पत्ति और प्रलयके स्थान) हैं, सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर हैं,आप किसी भी लौकिक प्रमाणसे जाने नहीं जा सकते, आप भक्ति और श्रद्धासम्पन्न पुरुषोंद्वारा भजन किये जानेयोग्य हैं, ऐसे नीलकमलके समान श्यामसुन्दर आप श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६॥ हे लक्ष्मीपते! आप प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे परे तथा सर्वथा निर्मान हैं। मायामें आसक्त कौन प्राणी आपको जाननेमें समर्थ हो सकता है ? आप अनुपम और महर्षियोंके माननीय हैं तथा

वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं
वन्दे रामं भवमुखवन्द्यं सुखकन्दम्॥ ७॥
नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं
नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम्।
मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं
वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम्॥ ८॥
श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं
ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः।
रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं
ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात्॥ ९॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डे त्रयोदशसर्गे श्रीब्रह्मदेवकृता श्रीरामस्तुतिः सम्पूर्णा।

(कृष्णावतारके समय) वृन्दावनमें अखिल देवसमूहकी वन्दना करनेवाले और रामरूपसे शिव आदि देवताओंके स्वयं वन्दनीय हैं; ऐसे आप आनन्दघन भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ७॥ जो नाना शास्त्र और वेदसमूहसे प्रतिपादित, नित्य आनन्दस्वरूप, निर्विकल्प, ज्ञानस्वरूप और अनादि हैं तथा जिन्होंने मेरा कार्य करनेके लिये मनुष्यरूप धारण किया है उन मरकतमणिके समान नीलवर्ण मथुरानाथ* भगवान् रामको प्रणाम करता हूँ॥ ८॥ इस पृथ्वीपर जो मनुष्य इच्छित कामनाओंको पूर्ण करनेवाले श्याममूर्ति भगवान् रामका ध्यान करते हुए ब्रह्माजीके कहे हुए इस ब्रह्मज्ञानविधायक आद्य स्तोत्रका श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा, वह ध्यानशील पुरुष सम्पूर्ण पापजालसे मुक्त हो जायगा॥ ९॥

---

* यहाँ भगवान् रामको मथुरानाथ कहकर श्रीराम और श्रीकृष्णकी अभिन्नता प्रकट की है।

३९—जटायुकृतश्रीरामस्तोत्रम्

जटायुरुवाच

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं सकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम्।
उपरमपरमं परात्मभूतं सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम्॥ १॥

निरवधिसुखमिन्दिराकटाक्षं क्षपितसुरेन्द्रचतुर्मुखादिदुःखम्।
नरवरमनिशं नतोऽस्मि रामं वरदमहं वरचापबाणहस्तम्॥ २॥

त्रिभुवनकमनीयरूपमीड्यं रविशतभासुरमीहितप्रदानम्।
शरणदमनिशं सुरागमूले कृतनिलयं रघुनन्दनं प्रपद्ये॥ ३॥

भवविपिनदवाग्निनामधेयं भवमुखदैवतदैवतं दयालुम्।
दनुजपतिसहस्रकोटिनाशं रवितनयासदृशं हरिं प्रपद्ये॥ ४॥

जटायु बोला—जो अगणित गुणशाली हैं, अप्रमेय हैं, जगत्के आदिकारण हैं तथा उसकी स्थिति और लय आदिके हेतु हैं, उन परम शान्तस्वरूप परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ॥ १॥ जो असीम आनन्दमय और श्रीकमलादेवीके कटाक्षके आश्रय हैं तथा जो ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवगणोंका दुःख दूर करनेवाले हैं, उन धनुष-बाणधारी वरदायक नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीको मैं अहर्निश प्रणाम करता हूँ॥ २॥ जो त्रिलोकीमें सबसे अधिक रूपवान् हैं, सबके स्तुत्य हैं, सैकड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हैं तथा वांछित फल देनेवाले हैं, उन शरणप्रद और रागाश्रित हृदयमें रहनेवाले श्रीरघुनाथजीको मैं अहर्निश प्रणाम करता हूँ॥ ३॥ जिनका नाम संसाररूप वनके लिये दावानलके समान है, जो महादेव आदि देवताओंके भी पूज्य देव हैं तथा जो सहस्रों करोड़ दानवेन्द्रोंका दलन करनेवाले और श्रीयमुनाजीके समान श्यामवर्ण हैं, उन दयामय श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४॥

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम्।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये॥ ५॥
गिरिशगिरिसुतामनोनिवासं गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम्।
सुरवरदनुजेन्द्रसेविताङ्घ्रिं सुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये॥ ६॥
परधनपरदारवर्जितानां परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम्।
परहितनिरतात्मनां सुसेव्यं रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये॥ ७॥
स्मितरुचिरविकासिताननाब्जमतिसुलभं सुरराजनीलनीलम्।
सितजलरुहचारुनेत्रशोभं रघुपतिमीशगुरोर्गुरुं प्रपद्ये॥ ८॥
हरिकमलजशम्भुरूपभेदात्त्वमिह विभासि गुणत्रयानुवृत्तः।
रविरिव जलपूरितोदपात्रेष्वमरपतिस्तुतिपात्रमीशमीडे॥ ९॥

जो संसारमें निरन्तर वासना रखनेवालोंसे अत्यन्त दूर हैं और संसारसे उपराम मुनिजनोंके सदैव दृष्टिगोचर रहते हैं तथा जिनके चरणरूप पोत (जहाज) संसारसागरसे पार करनेवाले हैं, उन रघुनाथजीकी मैं शरण लेता हूँ॥ ५॥ जो श्रीमहादेव और पार्वतीजीके मन-मन्दिरमें निवास करते हैं, जिनकी लीलाएँ अति मनोहारिणी हैं तथा देव और असुरपतिगण जिनके चरणकमलोंकी सेवा करते हैं, उन गिरिवरधारी सुखदायक रघुनायककी मैं शरण लेता हूँ॥ ६॥ जो परधन और परस्त्रीसे सदा दूर रहते हैं तथा पराये गुण और परायी विभूतिको देखकर प्रसन्न होते हैं, उन निरन्तर परोपकारपरायण महात्माओंसे सुसेवित कमलनयन श्रीरघुनाथजीकी मैं शरण लेता हूँ॥ ७॥ जिनका मुखकमल मनोहर मुसकानसे विकसित हो रहा है, जो भक्तोंके लिये अति सुलभ हैं, जिनके शरीरकी कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान सुन्दर नीलवर्ण है तथा जिनके मनोहर नेत्र श्वेत कमलकी-सी शोभावाले हैं, उन श्रीगुरु महादेवजीके परम गुरु श्रीरघुनाथजीकी मैं शरण लेता हूँ॥ ८॥ हे प्रभो! जलसे भरे हुए पात्रोंमें जैसे एक ही सूर्य प्रतिबिम्बित होता है वैसे ही सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंकी वृत्तिके कारण आप ही विष्णु, ब्रह्मा और

रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम्।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये॥ १०॥
इत्येवं स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः।
उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम्॥ ११॥
शृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद्वा नियतः पठेत्।
स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत्॥ १२॥
इति राघवभाषितं तदा श्रुतवान् हर्षसमाकुलो द्विजः।
रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्मसुपूजितं पदम्॥ १३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे अरण्यकाण्डेऽष्टमे सर्गे जटायुकृतश्रीरामस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

महादेवरूपसे भासित होते हैं। हे ईश! आप देवराज इन्द्रकी भी स्तुतिके पात्र हैं, मैं आपकी स्तुति करता हूँ॥ ९॥ आपका दिव्य शरीर सैकड़ों करोड़ कामदेवोंसे भी सुन्दर है, सैकड़ों मार्गोंमें फँसे हुए लोगोंसे आप अत्यन्त दूर हैं और यतीश्वरोंके हृदयमें आप सदा ही भासमान हैं। ऐसे आप आर्त्तिहर प्रभु रघुपतिकी मैं शरण लेता हूँ॥ १०॥ जटायुके इस प्रकार स्तुति करनेपर श्रीरघुनाथजी उसपर प्रसन्न होकर बोले—'जटायो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम मेरे परमधाम विष्णुलोकको जाओ'॥ ११॥ जो पुरुष मेरे इस स्तोत्रको एकाग्रचित्तसे सुने, लिखे अथवा पढ़े, वह मेरा सारूप्य-पद प्राप्त करता है और मरते समय उसे मेरा स्मरण होगा॥ १२॥ पक्षिराज जटायुने रघुनाथजीका यह कथन बड़े हर्षसे सुना और उन्हींके समान रूप धारणकर ब्रह्मा आदि लोकपालोंसे पूजित परमधामको चला गया॥ १३॥

४०—इन्द्रकृतश्रीरामस्तोत्रम्

इन्द्र उवाच

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं
भवारण्यदावानलाभाभिधानम् ।
भवानीहृदा भावितानन्दरूपं
भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम् ॥ १ ॥

सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुं
नराकारदेहं निराकारमीड्यम् ।
परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं
हरिं राममीशं भजे भारनाशम् ॥ २ ॥

प्रपन्नाखिलानन्ददोहं प्रपन्नं
प्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम् ।
तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यं
कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम् ॥ ३ ॥

इन्द्र बोले—जो नीलकमलकी-सी आभावाले हैं, संसाररूप वनके लिये जिनका नाम दावानलके समान है, श्रीपार्वतीजी जिनके आनन्दस्वरूपका हृदयमें ध्यान करती हैं, जो (जन्म-मरणरूप) संसारसे छुड़ानेवाले हैं और शंकरादि देवोंके आश्रय हैं, उन भगवान् रामको मैं भजता हूँ॥ १ ॥

जो देवमण्डलके दुःखसमूहका नाश करनेके एकमात्र कारण हैं तथा जो मनुष्यरूपधारी, आकारहीन और स्तुति किये जानेयोग्य हैं, पृथ्वीका भार उतारनेवाले उन परमेश्वर परमानन्दरूप पूजनीय भगवान् रामको मैं भजता हूँ॥ २ ॥ जो शरणागतोंको सब प्रकार आनन्द देनेवाले और उनके आश्रय हैं, जिनका नाम शरणागत भक्तोंके सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है, जिनका तप और योग एवं बड़े-बड़े योगीश्वरोंकी भावनाओंद्वारा चिन्तन किया जाता है तथा

सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तं
सदा योगभाजामदूरे विभान्तम्।
चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशं
विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये॥ ४॥

महायोगमायाविशेषानुयुक्तो
विभासीश लीलानराकारवृत्तिः।
त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः
सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके॥ ५॥

अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो
न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः।
इदानीं भवत्पादपद्मप्रसादात्
त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः॥ ६॥

स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिरामं
धराभारभूतासुरानीकदावम्।

जो सुग्रीवादिके मित्र हैं, उन मित्ररूप भगवान् रामको मैं भजता हूँ॥ ३॥ जो भोगपरायण लोगोंसे सदा दूर रहते हैं और योगनिष्ठ पुरुषोंके सदा समीप ही विराजते हैं, श्रीजानकीजीके लिये आनन्दस्वरूप उन चिदानन्दघन श्रीरघुनाथजीको मैं सर्वदा भजता हूँ॥ ४॥ हे भगवन्! आप अपनी महायोग-मायाके गुणोंसे युक्त होकर लीलासे ही मनुष्यरूप प्रतीत हो रहे हैं। जिनके कर्ण आपकी इन आनन्दमयी लीलाओंके कथामृतसे पूर्ण होते हैं, वे संसारमें नित्यानन्दरूप हो जाते हैं॥ ५॥ प्रभो! मैं तो सम्मान और सोमपानके उन्मादसे मतवाला हो रहा था, सर्वेश्वरताके अभिमानवश मैं अपने आगे किसीको कुछ भी नहीं समझता था। अब आपके चरणकमलोंकी कृपासे मेरा त्रिलोकाधिपतित्वका अभिमान चूर हो गया॥ ६॥ जो चमचमाते हुए रत्नजटित भुजबंद और हारोंसे सुशोभित हैं, वे पृथ्वीके भाररूप राक्षसोंकी

शरच्चन्द्रवक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं
दुरावारपारं भजे राघवेशम्॥ ७॥
सुराधीशनीलाभ्रनीलाङ्गकान्तिं
विराधादिरक्षोवधाल्लोकशान्तिम्।
किरीटादिशोभं पुरारातिलाभं
भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम्॥ ८॥
लसच्चन्द्रकोटिप्रकाशादिपीठे
समासीनमङ्के समाधाय सीताम्।
स्फुरद्धेमवर्णां तडित्पुञ्जभासां
भजे रामचन्द्रं निवृत्तार्तितन्द्रम्॥ ९॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डे त्रयोदशसर्गे इन्द्रकृतश्रीरामस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

सेनाके लिये दावानलके समान हैं, जिनका शरच्चन्द्रके समान मुख और अति मनोहर नेत्रकमल हैं तथा जिनका आदि-अन्त जानना अत्यन्त कठिन है, उन रघुनाथजीको मैं भजता हूँ॥ ७॥ जिनके शरीरकी इन्द्रनीलमणि और मेघके समान श्याम कान्ति है, जिन्होंने विराध आदि राक्षसोंको मारकर सम्पूर्ण लोकोंमें शान्ति स्थापित की है, उन किरीटादिसे सुशोभित और श्रीमहादेवजीके परमधन रघुकुलेश्वर श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ॥ ८॥ जो तेजोमय सुवर्णके-से वर्णवाली और बिजलीके समान कान्तिमयी जानकीजीको गोदमें लिये करोड़ों चन्द्रमाओंके समान देदीप्यमान सिंहासनपर विराजमान हैं, उन दुःख और आलस्यसे हीन भगवान् रामको मैं भजता हूँ॥ ९॥

४१—श्रीरामाष्टकम्

कृतार्तदेववन्दनं दिनेशवंशनन्दनम्।
सुशोभिभालचन्दनं नमामि राममीश्वरम्॥ १॥
मुनीन्द्रयज्ञकारकं शिलाविपत्तिहारकम्।
महाधनुर्विदारकं नमामि राममीश्वरम्॥ २॥
स्वतातवाक्यकारिणं तपोवने विहारिणम्।
करे सुचापधारिणं नमामि राममीश्वरम्॥ ३॥
कुरङ्गमुक्तसायकं जटायुमोक्षदायकम्।
प्रविद्धकीशनायकं नमामि राममीश्वरम्॥ ४॥
प्लवङ्गसङ्गसम्मतिं निबद्धनिम्नगापतिम्।
दशास्यवंशसङ्क्षतिं नमामि राममीश्वरम्॥ ५॥

आर्त देवताओंने जिनकी वन्दना की है, जो सूर्यवंशको आनन्दित करनेवाले हैं तथा जिनके ललाटपर चन्दन सुशोभित है, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १॥ जो मुनिराज विश्वामित्रका यज्ञ सम्पन्न करानेवाले, पाषाणरूपा अहल्याका कष्ट निवारण करनेवाले तथा श्रीशंकरका महान् धनुष तोड़नेवाले हैं, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २॥ जो अपने पिताके वचनोंका पालन करनेवाले, तपोवनमें विचरनेवाले और हाथोंमें धनुष धारण करनेवाले हैं, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३॥ जिन्होंने मायामृगपर बाण छोड़ा था, जटायुको मोक्ष प्रदान किया था तथा कपिराज बालीको विद्ध किया था, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४॥ जिन्होंने वानरोंके साथ मित्रता की, समुद्रका पुल बाँधा और रावणके वंशका विनाश किया, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ५॥

विदीनदेवहर्षणं कपीप्सितार्थवर्षणम्।
स्वबन्धुशोककर्षणं नमामि राममीश्वरम्॥ ६॥
गतारिराज्यरक्षणं प्रजाजनार्तिभक्षणम्।
कृतास्तमोहलक्षणं नमामि राममीश्वरम्॥ ७॥
हृताखिलाचलाभरं स्वधामनीतनागरम्।
जगत्तमोदिवाकरं नमामि राममीश्वरम्॥ ८॥
इदं समाहितात्मना नरो रघूत्तमाष्टकम्।
पठन्निरन्तरं भयं भवोद्भवं न विन्दते॥ ९॥

इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीरामाष्टकं सम्पूर्णम्।

जो अति दीन देवताओंको प्रसन्न करनेवाले, वानरोंकी इच्छित कामनाओंको पूर्ण करनेवाले और अपने बन्धुओंका शोक शान्त करनेवाले हैं, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ६॥ जो शत्रुहीन (निष्कण्टक) राज्यके पालक, प्रजाजनकी भीतिके भक्षक और मोहकी निवृत्ति करनेवाले हैं, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ७॥ जिन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीका भार हरण किया है, जो सकल नगरनिवासियोंको अपने धामको ले गये तथा जो संसाररूप अन्धकारके लिये सूर्यरूप हैं, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ८॥ जो पुरुष इस रामाष्टकको एकाग्रचित्तसे निरन्तर पढ़ता है, उसे संसारजनित भयकी प्राप्ति नहीं होती॥ ९॥

४२—श्रीसीतारामाष्टकम्

ब्रह्ममहेन्द्रसुरेन्द्रमरुद्गणरुद्रमुनीन्द्रगणैरतिरम्यं
क्षीरसरित्पतितीरमुपेत्य नुतं हि सतामवितारमुदारम्।
भूमिभरप्रशमार्थमथ प्रथितप्रकटीकृतचिद्घनमूर्तिं
त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम्॥ १॥
पद्मदलायतलोचन हे रघुवंशविभूषण देव दयालो
निर्मलनीरदनीलतनोऽखिललोकहृदम्बुजभासक भानो।
कोमलगात्र पवित्रपदाब्जरजःकणपावितगौतमकान्त। त्वां०॥ २॥
पूर्ण परात्पर पालय मामतिदीनमनाथमनन्तसुखाब्धे
प्रावृडदभ्रतडित्सुमनोहरपीतवराम्बर राम नमस्ते।
कामविभञ्जन कान्ततरानन काञ्चनभूषण रत्नकिरीट। त्वां०॥ ३॥

ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, मरुद्गण, रुद्र और मुनिजनोंने जब अति रमणीय क्षीरसागरके तटपर जाकर संत-प्रतिपालक अति उदार आपकी वन्दना की, तब भूमिका भार उतारनेके लिये जिन आपने अपनी चिद्घन मूर्तिको प्रकट किया, हे दयामय रघुनन्दन! उन आपको भजनेवाले मुझको अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये॥ १॥ हे कमलदललोचन! हे रघुवंशावतंस! हे देव! हे दयालो! हे निर्मल श्यामघनके सदृश शरीरवाले! हे निखिललोकहृत्पद्म-प्रभाकर! हे अति सुकुमार शरीरवाले! अपने अति पुनीत चरणारविन्दोंकी धूलिसे गौतमपत्नी अहल्याको पवित्र करनेवाले, दयामय रघुनन्दन! अपने भजनेवाले मुझको आप अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये॥ २॥ हे पूर्ण! हे परात्पर! हे अनन्त सुखसागर! मुझ अति दीन और अनाथकी रक्षा करो। वर्षाकालीन अति चपल चंचलाके समान मनोहर पीताम्बरधारी श्रीराम! आपको नमस्कार है। हे कन्दर्प-दर्प-दलन, हे सुन्दर वदन, सुवर्ण-भूषण एवं रत्नकिरीटधारी, दयामय, रघुनन्दन! अपने भजनेवाले मुझको आप अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये॥ ३॥

दिव्यशरच्छशिकान्तिहरोज्ज्वलमौक्तिकमालविशालसुमौले
कोटिरविप्रभ चारुचरित्रपवित्र विचित्रधनुःशरपाणे।
चण्डमहाभुजदण्डविखण्डितराक्षसराजमहागजदण्डं। त्वां० ॥ ४ ॥
दोषविहिंस्त्रभुजङ्गसहस्त्रसुरोषमहानलकीलकलापे
जन्मजरामरणोर्मिमये मदमन्मथनक्रविचक्रभवाब्धौ।
दुःखनिधौ च चिरं पतितं कृपयाद्य समुद्धर राम ततो मां। त्वां० ॥ ५ ॥
संसृतिघोरमदोत्कटकुञ्जरतृट्क्षुदनीरदपिण्डिततुण्डं
दण्डकरोन्मथितं च रजस्तम उन्मदमोहपदोज्झितमार्तम्।
दीनमनन्यगतिं कृपणं शरणागतमाशु विमोचय मूढं। त्वां० ॥ ६ ॥
जन्मशतार्जितपापसमन्वितहृत्कमले पतिते पशुकल्पे
हे रघुवीर महारणधीर दयां कुरु मय्यतिमन्दमनीषे।
त्वं जननी भगिनी च पिता मम तावदसि त्वविताऽपि कृपालो। त्वां० ॥ ७ ॥

दिव्यशरच्चन्द्रकी कान्तिको मलिन करनेवाली स्वच्छ मुक्तामालाको अपने सुविशाल मौलिपर धारण करनेवाले, कोटि सूर्यकी-सी आभावाले, सदाचारसे पवित्र, करकमलोंमें विचित्र धनुष-बाण धारण करनेवाले एवं अपने प्रचण्ड भुजदण्डसे रावणरूपी महागजका वध करनेवाले हे दयामय श्रीरघुनन्दन! अपने भजनेवाले मुझको आप अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये ॥ ४ ॥ जिसमें दोषरूपी हजारों हिंसक सर्प हैं, क्रोधरूपी बड़वानलकी ज्वालाएँ उठ रही हैं, जन्म-जरा-मरणरूपिणी तरंगावली है तथा मद और कामरूपी मगरमच्छ और भँवर हैं, ऐसे इस दुःखमय भवसागरमें चिरकालसे पड़े हुए मुझको, हे राम! कृपया अब निकालिये; और हे दयामय रघुनन्दन! अपने भजनेवाले मुझको आप अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये ॥ ५ ॥ तृषा और क्षुधा जिसके तीक्ष्ण दाँत हैं, ऐसा संसाररूपी एक उन्मत्त हाथी है। उसको यमरूपी सूँड़से झटकोंमें पड़े हुए तथा रज, तम, उन्माद और मोहरूप चारों पगोंसे कुचले हुए अति आर्त, दीन, अनन्यशरण मुझ मूढ़को शीघ्र ही छुड़ाइये; और हे दयामय रघुनन्दन! अपने भजनेवाले मुझको अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये ॥ ६ ॥ जिसका हृदय-कमल सैकड़ों जन्मोंके संचित पापोंसे युक्त है, जो पशुतुल्य पतित हो गया है,

वां तु दयालुमकिञ्चनवत्सलमुत्पलहारमपारमुदारं
ाम विहाय कमन्यमनामयमीश जनं शरणं ननु यायाम्।
वत्पदपद्ममतः श्रितमेव मुदा खलु देव सदाव ससीत। त्वां० ॥ ८ ॥
ाः करुणामृतसिन्धुरनाथजनोत्तमबन्धुरजोत्तमकारी
ाक्तभयोर्मिभवाब्धितरिः सरयूतटिनीतटचारुविहारी।
ास्य रघुप्रवरस्य निरन्तरमष्टकमेतदनिष्टहरं वै
ास्तु पठेदमरः स नरो लभतेऽच्युतरामपदाम्बुजदास्यम्॥ ९ ॥

ति श्रीमन्मधुसूदनाश्रमशिष्याच्युतयतिविरचितं श्रीसीतारामाष्टकं सम्पूर्णम्।

स अति मतिमन्द मुझपर हे महारणधीर रघुवीर! कृपा कीजिये। आप ो मेरे माता, पिता और भगिनी हैं तथा हे कृपालो! आप ही मेरे रक्षक । हे दयामय रघुनन्दन! अपना भजन करनेवाले मुझको अपने ारणकमलोंकी दासता दीजिये॥ ७॥ हे मेरे स्वामी राम! गलेमें कमलपुष्पोंकी ाला धारण करनेवाले आप-सदृश अतिशय उदार दीनवत्सल और यामय प्रभुको छोड़कर मैं और किस अनामय पुरुषकी शरण लूँ ? अतः ने तो आपके ही चरणकमलोंका आसरा लिया है। हे सीताजीके सहित म! आप प्रसन्न होकर मेरी सर्वदा रक्षा कीजिये और हे दयामय भगवान् घुनन्दन! आपका भजन करनेवाले मुझको अपने चरणकमलोंकी दासता ीजिये॥ ८॥ जो करुणारूप अमृतके समुद्र हैं, अनाथोंके उत्तम बन्धु हैं, ाजन्मा और उत्तम कर्मा हैं, भक्तोंको भयरूप तरंगावलिसे पूर्ण ंसारसागरसे पार करनेके लिये नौकारूप हैं और सरयू नदीके तीरपर न्दर लीलाएँ करनेवाले हैं, उन रघुश्रेष्ठके इस अष्टकका, जो सर्वदा ब अनिष्टोंको दूर करनेवाला है, जो पुरुष पाठ करता है, वह अमर । जाता है और अविनाशी भगवान् रामके चरणकमलोंकी दासता प्राप्त रता है॥ ९॥

४३—श्रीरामचन्द्रस्तुतिः

नमामि भक्तवत्सलं कृपालु शील कोमलं
भजामि ते पदांबुजं अकामिनां स्वधामदं।
निकाम श्याम सुंदरं भवांबुनाथ मन्दरं
प्रफुल्ल कंज लोचनं मदादि दोष मोचनं॥ १॥
प्रलंब बाहु विक्रमं प्रभोऽप्रमेय वैभवं
निषंग चाप सायकं धरं त्रिलोक नायकं।
दिनेश वंश मंडनं महेश चाप खंडनं
मुनींद्र संत रंजनं सुरारि वृंद भंजनं॥ २॥
मनोज वैरि वंदितं अजादि देव सेवितं
विशुद्ध बोध विग्रहं समस्त दूषणापहं।
नमामि इंदिरा पतिं सुखाकरं सतां गतिं
भजे सशक्ति सानुजं शची पति प्रियानुजं॥ ३॥

भक्तोंके हितकारी, कृपालु और अतिकोमल स्वभाववाले! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जो निष्काम पुरुषोंको अपना धाम देनेवाले हैं ऐसे आपके चरण-कमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ। जो अति सुन्दर श्याम शरीरवाले, संसार-समुद्रके मन्थनके लिये मन्दराचलरूप, खिले हुए कमलके-से नेत्रोंवाले तथा मद आदि दोषोंसे छुड़ानेवाले हैं॥ १॥ जिनकी भुजाएँ लंबी-लंबी और अति बलिष्ठ हैं, जिनके वैभवका कोई परिमाण नहीं है, जो धनुष, बाण और तरकश धारण किये हैं, त्रिलोकीके नाथ हैं, सूर्यकुलके भूषण हैं, शंकरके धनुषको तोड़नेवाले हैं, मुनिजन तथा महात्माओंको आनन्दित करनेवाले हैं, दैत्योंका दलन करनेवाले हैं, कामारि श्रीशंकरजीसे वन्दित हैं, ब्रह्मा आदि देवगणोंसे सेवित हैं, विशुद्ध बोधस्वरूप हैं, समस्त दोषोंको दूर करनेवाले हैं, श्रीलक्ष्मीजीके पति हैं, सुखकी खानि हैं, संतोंकी एकमात्र गति हैं तथा शचीपति इन्द्रके प्यारे अनुज (उपेन्द्र) हैं; हे प्रभो! ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ और सीताजी तथा भाई लक्ष्मणके साथ

ादंघ्रि मूल ये नराः भजन्ति हीन मत्सराः
तंति नो भवार्णवे वितर्क वीचि संकुले।
ाविक्त वासिनः सदा भजंति मुक्तये मुदा
ारस्य इंद्रियादिकं प्रयांति ते गतिं स्वकं॥ ४॥
मेकमद्भुतं प्रभुं निरीहमीश्वरं विभुं
गद्गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलं।
जामि भाव वल्लभं कुयोगिनां सुदुर्लभं
त्रभक्त कल्प पादपं समं सुसेव्यमन्वहं॥ ५॥
नूप रूप भूपतिं नतोऽहमुर्विजा पतिं
सीद मे नमामि ते पदाब्ज भक्ति देहि मे।
ठंति ये स्तवं इदं नरादरेण ते पदं
जंति नात्र संशयं त्वदीय भक्ति संयुताः॥ ६॥

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृता श्रीरामचन्द्रस्तुतिः सम्पूर्णा।

ापको भजता हूँ॥ २-३॥ जो लोग मद-मत्सरादिसे रहित होकर आपके ण्णोंको भजते हैं, वे फिर इस नाना वितर्क-तरंगावलिपूर्ण संसार-सागरमें ीं पड़ते तथा जो एकान्तसेवी महात्मागण अपनी इन्द्रियोंका संयम करके न्नचित्तसे भवबन्धविमोचनके लिये आपका भजन करते हैं, वे अपने भीष्ट पदको पाते हैं॥ ४॥ जो अति निरीह, ईश्वर और सर्वव्यापक हैं, ात्के गुरु, नित्य, जाग्रदादि अवस्थात्रयसे विलक्षण और अद्वैत हैं, केवल वके भूखे हैं, कुयोगियोंको दुर्लभ हैं, अपने भक्तोंके लिये कल्पवृक्षरूप हैं ा समस्त (पक्षपातरहित) और सदा सुखपूर्वक सेवन करनेयोग्य हैं, ऐसे ा (आप) अद्भुत प्रभुको मैं भजता हूँ॥ ५॥ अनुपम रूपवान् राजराजेश्वर ानकीनाथको मैं प्रणाम करता हूँ। मैं आपकी बार-बार वन्दना करता हूँ; ाप मुझपर प्रसन्न होइये और मुझे अपने चरण-कमलोंकी भक्ति दीजिये। । मनुष्य इस स्तोत्रका आदरपूर्वक पाठ करेंगे, वे आपके भक्ति-भावसे रकर आपके निज पदको प्राप्त होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं॥ ६॥

४४—श्रीराममङ्गलाशासनम्

मङ्गलं कौशलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम्॥ १॥
वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामलमूर्तये।
पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम्॥ २॥
विश्वामित्रान्तरङ्गाय मिथिलानगरीपतेः।
भाग्यानां परिपाकाय भव्यरूपाय मङ्गलम्॥ ३॥
पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया।
नन्दिताखिललोकाय रामभद्राय मङ्गलम्॥ ४॥
त्यक्तसाकेतवासाय चित्रकूटविहारिणे।
सेव्याय सर्वयमिनां धीरोदयाय मङ्गलम्॥ ५॥
सौमित्रिणा च जानक्या चापबाणासिधारिणे।
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम्॥ ६॥

प्रशंसनीय गुणोंके सागर कौशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजीका मंगल हो, चक्रवर्ती राजा दशरथके पुत्र मण्डलेश्वर श्रीरामचन्द्रजीका मंगल हो॥ १॥ जो वेद-वेदान्तोंके ज्ञेय हैं, मेघके समान श्याममूर्तिवाले हैं और पुरुषोंमें जिनका स्वरूप अत्यन्त मनोहर है, उन पुण्यश्लोक (पवित्र यशवाले) श्रीरामचन्द्रजीका मंगल हो॥ २॥ जो विश्वामित्र ऋषिके प्रिय और राजा जनकके भाग्योंके फलस्वरूप हैं, उन भव्यरूपवाले श्रीरामचन्द्रजीका मंगल हो॥ ३॥ जो सदा पिताकी भक्ति करनेवाले हैं, जो अपने भ्राताओं और सीताजीके साथ सुशोभित होते हैं और जिन्होंने समस्त लोकको आनन्दित किया है, उन श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ४॥ जिन्होंने अयोध्या-निवासको छोड़कर चित्रकूटपर विहार किया और जो सब यतियोंके सेव्य हैं, उन धीरोदय श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ५॥ लक्ष्मण तथा जानकीजी सदा भक्तिपूर्वक जिनकी सेवा करते हैं, जो धनुष-बाण

दण्डकारण्यवासाय खरदूषणशत्रवे।
गृध्रराजाय भक्ताय मुक्तिदायास्तु मङ्गलम्॥ ७ ॥
सादरं शबरीदत्तफलमूलाभिलाषिणे।
सौलभ्यपरिपूर्णाय सत्त्वोद्रिक्ताय मङ्गलम्॥ ८ ॥
हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्टदायिने।
बालिप्रमथनायास्तु महाधीराय मङ्गलम्॥ ९ ॥
श्रीमते रघुवीराय सेतूल्लङ्घितसिन्धवे।
जितराक्षसराजाय रणधीराय मङ्गलम्॥ १० ॥
विभीषणकृते प्रीत्या लङ्काभीष्टप्रदायिने।
सर्वलोकशरण्याय श्रीराघवाय मङ्गलम्॥ ११ ॥
आसाद्य नगरीं दिव्यामभिषिक्ताय सीतया।
राजाधिराजराजाय रामभद्राय मङ्गलम्॥ १२ ॥

और तलवारको धारण किये हुए हैं, उन मेरे स्वामी श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ६॥ जिन्होंने दण्डकवनमें निवास किया है, जो खर-दूषणके शत्रु हैं और अपने भक्त गृध्रराजको मुक्ति देनेवाले हैं, उन श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ७॥ जो आदरसहित शबरीके भी दिये हुए फल-मूलके अभिलाषी हुए, जो सुलभतासे पूर्ण (अर्थात् थोड़े ही परिश्रमसे प्राप्य) हैं और जिनमें सत्त्वगुणका आधिक्य है, उन श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ८॥ जो हनुमान्‌जीसे युक्त हैं, हरीश (सुग्रीव) के अभीष्टको देनेवाले हैं और बालिको मारनेवाले हैं, उन महाधीर श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ९॥ जो सेतु बाँधकर समुद्रको लाँघ गये और जिन्होंने राक्षसराज रावणपर विजय पायी, उन रणधीर श्रीमान् रघुवीरका मंगल हो॥ १०॥ जिन्होंने प्रसन्नतासे विभीषणको उनका अभीष्ट लंकाका राज्य दे दिया और जो सब लोकोंको शरणमें रखनेवाले हैं, उन श्रीराघव रामभद्रका मंगल हो॥ ११॥ वनसे दिव्य नगरी अयोध्यामें आनेपर जिनका सीताजीके सहित राज्याभिषेक हुआ, उन महाराजाओंके राजा श्रीरामभद्रका

ब्रह्मादिदेवसेव्याय ब्रह्मण्याय महात्मने।
जानकीप्राणनाथाय रघुनाथाय मङ्गलम्॥ १३॥
श्रीसौम्यजामातृमुनेः कृपयास्मानुपेयुषे।
महते मम नाथाय रघुनाथाय मङ्गलम्॥ १४॥
मङ्गलाशासनपरैर्मदाचार्यपुरोगमैः ।
सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः सत्कृतायास्तु मङ्गलम्॥ १५॥
रम्यजामातृमुनिना मङ्गलाशासनं कृतम्।
त्रैलोक्याधिपतिः श्रीमान् करोतु मङ्गलं सदा॥ १६॥

इति श्रीवरवरमुनिस्वामिकृतश्रीराममङ्गलाशासनं सम्पूर्णम्।

मंगल हो॥ १२॥ जो ब्रह्मा आदि देवताओंके सेव्य हैं, ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों और वेदोंकी रक्षा करनेवाले) हैं, श्रीजानकीजीके प्राणनाथ हैं, उन रघुकुलके नाथ श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ १३॥ जो श्रीसम्पन्न सुन्दर आकारवाले जामाता मुनिकी कृपासे हमलोगोंको प्राप्त हुए हैं, उन मेरे महान् प्रभु रघुनाथजीका मंगल हो॥ १४॥ मेरे आचार्य जिनमें मुख्य हैं, उन अर्वाचीन आचार्यों तथा सम्पूर्ण प्राचीन आचार्योंने मंगलाशासनमें परायण होकर जिनका सत्कार किया है, उन श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ १५॥ जामातामुनिने इस सुन्दर मंगलाशासनका निर्माण किया है। इससे प्रसन्न होकर तीनों लोकोंके पति श्रीमान् रामभद्र सदा ही मंगल करें॥ १६॥

४५—श्रीरामप्रेमाष्टकम्

श्यामाम्बुदाभमरविन्दविशालनेत्रं
बन्धूकपुष्पसदृशाधरपाणिपादम् ।
सीतासहायमुदितं धृतचापबाणं
रामं नमामि शिरसा रमणीयवेषम्॥ १॥
पटुजलधरधीरध्वानमादाय चापं
पवनदमनमेकं बाणमाकृष्य तूणात्।
अभयवचनदायी सानुजः सर्वतो मे
रणहतदनुजेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः॥ २॥
दशरथकुलदीपोऽमेयबाहुप्रतापो
दशवदनसकोपः क्षालिताशेषपापः।

जो नील मेघके समान श्याम वर्ण हैं, जिनके कमलके समान विशाल नेत्र हैं, जो बन्धूक पुष्पके समान अरुण ओष्ठ, हस्त और चरणोंसे शोभित हैं, जो सीताजीके साथ विराजमान एवं अभ्युदयशील हैं, जिन्होंने धनुष-बाणको धारण किया है, जिनका वेष बड़ा ही सुन्दर है, सीताजीके सहित उन श्रीरामको मैं सिरसे नमस्कार करता हूँ॥ १॥ जो प्रौढ़ मेघके समान धीर-गम्भीर, टंकार-ध्वनि करनेवाले धनुषको धारणकर और अपने वेगसे वायुका भी मान-मर्दन करनेवाले एक बाणको तूणीर (तरकस) से खींचकर 'मत डरो' ऐसा कहते हुए अपने आश्रितोंको अभय-वचन देनेवाले हैं तथा जिन्होंने रणमें दानवराज (रावण) को मारा है, लक्ष्मणके सहित वे श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सब प्रकार सहायक हैं॥ २॥ जो राजा दशरथके कुलके दीपक (प्रकाशक) हैं, जिनके बाहुबलका प्रताप मापा नहीं जा सकता, जो रावणके ऊपर कोप करनेवाले, समस्त पापको दूर करनेवाले, असुरोंको ताप देनेवाले और अनेक

कृतसुररिपुतापो नन्दितानेकभूपो
विगततिमिरपङ्को रामचन्द्रः सहायः ॥ ३ ॥
कुवलयदलनीलः कामितार्थप्रदो मे
कृतमुनिजनरक्षो रक्षसामेकहन्ता।
अपहृतदुरितोऽसौ नाममात्रेण पुंसा-
मखिलसुरनृपेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ४ ॥
असुरकुलकृशानुर्मानसाम्भोजभानुः
सुरनरनिकराणामग्रणीर्मे रघूणाम्।
अगणितगुणसीमा नीलमेघौघधामा
शमदमितमुनीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ५ ॥
कुशिकतनययागं रक्षिता लक्ष्मणाढ्यः
पवनशरनिकायक्षिप्तमारीचमायः ।

राजाओंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, अज्ञान और पापसे रहित वे श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ३॥ जो कमल-पत्रके समान श्यामवर्ण, मेरी इष्ट वस्तुओंके दाता, मुनिजनोंकी रक्षा करनेवाले और राक्षसोंको एकमात्र मारनेवाले हैं, जो [अपने] राम-नामके उच्चारणमात्रसे ही पुरुषोंके पापका नाश करनेवाले हैं, समस्त देवताओं और राजाओंके स्वामी वे श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ४॥ जो असुरकुल [को भस्म करने] के लिये अग्नि हैं, देवता और मनुष्यके समूहोंके हृदय-कमलको विकसित करनेके लिये सूर्य हैं, असंख्य गुणोंकी सीमा हैं, नील मेघ-मण्डलीके समान जिनका श्याम शरीर है और जो शममें मुनीश्वरोंको भी जीतनेवाले हैं, वे रघुकुलके अग्रणी श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ५॥ जिन्होंने लक्ष्मणको साथ लेकर विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की है और वायुवेगवाले बाणोंके समूहसे मारीच

विदलितहरचापो मेदिनीनन्दनाया
नयनकुमुदचन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ६ ॥

पवनतनयहस्तन्यस्तपादाम्बुजात्मा
कलशभववचोभिः प्राप्तमाहेन्द्रधन्वा।
अपरिमितशरौघैः पूर्णतूणीरधीरो
लघुनिहतकपीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ७ ॥

कनकविमलकान्त्या सीतयालिङ्गिताङ्गो
मुनिमनुजवरेण्यः सर्ववागीशवन्द्यः।
स्वजननिकरबन्धुर्लीलया बद्धसेतुः
सुरमनुजकपीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ८ ॥

निशाचरकी मायाका नाश किया है, जो शिवजीके धनुषका भंजन करनेवाले तथा पृथ्वीकी पुत्री (सीता) के नयनकुमुदको विकसित करनेके लिये चन्द्रमाके समान हैं, वे श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ६ ॥ जो हनुमान्‌जीके हाथोंपर अपने चरण-कमलोंको रखे हुए हैं, जिन्होंने अगस्त्य ऋषिके कहनेसे इन्द्रधनुषको ग्रहण किया, जिनका तूणीर (तरकस) असंख्य बाणोंसे परिपूर्ण है, जो रणधीर हैं और जिन्होंने अति शीघ्रतासे वानरराज बालीको मार गिराया, वे श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ७ ॥ जो सुवर्णके समान निर्मल और गौर कान्तिवाली सीताके सम्पर्कमें रहते हैं, ऋषियों और मनुष्योंने भी जिन्हें श्रेष्ठ एवं आदरणीय माना है, जो सम्पूर्ण वागीश्वरोंके वन्दनीय तथा अपने भक्त-समुदायकी बन्धुके समान रक्षा करनेवाले हैं, जिन्होंने लीलासे ही समुद्रपर पुल बाँध दिया था, वे देवता, मनुष्य तथा वानरोंके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ८ ॥

यामुनाचार्यकृतं दिव्यं रामाष्टकमिदं शुभम्।
यः पठेत् प्रयतो भूत्वा स श्रीरामान्तिकं व्रजेत्॥ ९॥

इति श्रीयामुनाचार्यकृतं श्रीरामप्रेमाष्टकं सम्पूर्णम्।

४६—श्रीरामचन्द्राष्टकम्

चिदाकारो धाता परमसुखदः पावनतनु-
र्मुनीन्द्रैर्योगीन्द्रैर्यतिपतिसुरेन्द्रैर्हनुमता ।
सदा सेव्यः पूर्णो जनकतनयाङ्गः सुरगुरू
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम्॥ १॥
मुकुन्दो गोविन्दो जनकतनयालालितपदः
पदं प्राप्ता यस्याधमकुलभवा चापि शबरी।
गिरातीतोऽगम्यो विमलधिषणैर्वेदवचसा। रमा०॥ २॥

जो पुरुष यामुनाचार्यके द्वारा रचित इस दिव्य तथा कल्याणदायक श्रीरामप्रेमाष्टक-स्तोत्रका शुद्धभावसे पाठ करता है, वह श्रीरामचन्द्रजीके सन्निकट निवास प्राप्त करता है॥ ९॥

जो ज्ञानस्वरूप हैं, जगत्का धारण-पोषण करनेवाले हैं, परमसुखके दाता हैं, जिनका शरीर सबको पवित्र करनेवाला है, मुनीन्द्र, योगीन्द्र, यतीश्वर, देवेश्वर और हनुमान् जिनकी सदा सेवा करते हैं, जो पूर्ण हैं, सीताजी जिनकी अर्द्धांगिनी हैं; जो देवताओंके भी गुरु हैं; वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ १॥ जो मुकुन्द, गोविन्द नामसे कहे जाते हैं, सीताजीने जिनके चरणोंका लालन किया है, [जिनका भजन करनेसे] नीच कुलमें उत्पन्न शबरी भी जिनके परमधामको प्राप्त हो गयी, जो विमल बुद्धिवालोंकी भी वाणीके परे हैं और वेदोंके वचनसे भी अगम्य हैं; वे

धराधीशोऽधीशः सुरनरवराणां रघुपतिः
किरीटी केयूरी कनककपिशः शोभितवपुः।
समासीनः पीठे रविशतनिभे शान्तमनसो। रमा०॥ ३॥
वरेण्यः शारण्यः कपिपतिसखश्चान्तविधुरो
ललाटे काश्मीरो रुचिरगतिभङ्गः शशिमुखः।
नराकारो रामो यतिपतिनुतः संसृतिहरो। रमा०॥ ४॥
विरूपाक्षः काश्यामुपदिशति यन्नाम शिवदं
सहस्रं यन्नाम्नां पठति गिरिजा प्रत्युषसि वै।
स्वलोके गायन्तीश्वरविधिमुखा यस्य चरितं। रमा०॥ ५॥

लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ २॥ जो पृथ्वीके अधीश्वर हैं, श्रेष्ठ देवताओं और मनुष्योंके भी स्वामी हैं, रघुकुलके नाथ हैं, जिन्होंने सिरपर मुकुट और बाहुओंमें केयूर धारण किये हैं, जो सोनेके समान पीतवर्ण (वस्त्र पहने हुए) हैं, जिनका शरीर शोभित हो रहा है और जो सैकड़ों सूर्यके समान देदीप्यमान सिंहासनपर बैठे हुए हैं; वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी शान्त हृदयवाले मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ३॥ जो श्रेष्ठ हैं, शरण देनेवाले हैं, सुग्रीवके मित्र हैं, अन्तसे रहित हैं, जिनके ललाटमें केशरका तिलक है, जिनकी चाल अति सुन्दर है, मुखारविन्द चन्द्रमाके समान आनन्ददायी है, जो मनुष्यरूपमें प्रतीत होनेपर भी राम (योगियोंके ध्येय परब्रह्म) हैं,* यतीश्वरगण जिनकी स्तुति करते हैं, जो जन्म-मृत्युरूप संसारके हरनेवाले हैं; वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्र मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ४॥ काशीमें भगवान् शंकर जिनके कल्याणप्रद नामका [मुमूर्षु

---

* 'रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः' (इनमें योगीजन रमण करते हैं, इसलिये इनकी संज्ञा 'राम' है) इस व्युत्पत्तिके अनुसार यहाँ 'राम' का अर्थ परब्रह्म है।

परो धीरोऽधीरोऽसुरकुलभवश्चासुरहरः
परात्मा सर्वज्ञो नरसुरगणैर्गीतसुयशाः।
अहल्याशापघ्नः शरकरऋजुः कौशिकसखो। रमा० ॥ ६ ॥
हृषीकेशः शौरिर्धरणिधरशायी मधुरिपु-
रुपेन्द्रो वैकुण्ठो गजरिपुहरस्तुष्टमनसा।
बलिध्वंसी वीरो दशरथसुतो नीतिनिपुणो। रमा० ॥ ७ ॥
कविः सौमित्रीड्यः कपटमृगघाती वनचरो
रणश्लाघी दान्तो धरणिभरहर्ता सुरनुतः।
अमानी मानज्ञो निखिलजनपूज्यो हृदिशयो। रमा० ॥ ८ ॥

प्राणियोंको] उपदेश करते हैं, श्रीपार्वतीजी प्रतिदिन प्रभात-कालमें जिनके सहस्र-नामका पाठ करती हैं, शिव, ब्रह्मा आदि (देवगण) अपने-अपने लोकोंमें जिनके दिव्य चरित्रका गान करते हैं, वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्र मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ५॥ जो अत्यन्त धीर होकर भी अधीर (अविद्याको दूर करनेवाले) हैं, असुर (सूर्य) के कुलमें उत्पन्न होकर भी असुर (राक्षसकुल) का संहार करनेवाले हैं, परमात्मा हैं, सर्वज्ञ हैं, मनुष्य तथा देवतागण जिनके सुयशका गान करते हैं, जिन्होंने अहल्याके शापका नाश किया, जिनके हाथमें बाण शोभित है, जो सरल स्वभाववाले और विश्वामित्रके मित्र हैं, वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्र मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ६॥ जो हृषीकेश, शौरि, शेषशायी, मधुसूदन, उपेन्द्र, वैकुण्ठ आदि नामसे कहे जाते हैं, जिन्होंने प्रसन्न होकर गजराजके शत्रु (ग्राह) का नाश किया, जो बलिको पदच्युत करनेवाले हैं, वीर हैं, वे नीतिनिपुण, लक्ष्मीपति, दशरथनन्दन, भगवान् श्रीरामचन्द्र मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ७॥ जो कवि (त्रिकाल-दर्शी) हैं, लक्ष्मणजीके पूज्य हैं, जिन्होंने वनमें भ्रमण करते हुए मायामृग (मारीच) का वध किया है, जो युद्धप्रिय हैं, दान्त (मन और

इदं रामस्तोत्रं वरममरदासेन रचित-
मुषःकाले भक्त्या यदि पठति यो भावसहितम्।
मनुष्यः स क्षिप्रं जनिमृतिभयं तापजनकं
परित्यज्य श्रेष्ठं रघुपतिपदं याति शिवदम्॥ ९॥

इति श्रीमद्रामदासपूज्यपादशिष्यश्रीमद्धंसदासशिष्येणामरदासाख्यकविना विरचितं श्रीरामचन्द्राष्टकं समाप्तम्।

इन्द्रियोंका दमन करनेवाले) हैं, पृथ्वीके भारको हरनेवाले तथा देवताओंसे स्तुत हैं, जो स्वयं मानरहित होकर दूसरोंके सम्मानके ज्ञाता (कृतज्ञ) हैं, सब लोगोंके पूज्य हैं, सबके हृदयमें निवास करनेवाले हैं, वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्र मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ८॥ जो मनुष्य प्रातःकाल भक्ति और श्रद्धाके साथ अमरदास कविके बनाये हुए इस सुन्दर रामस्तोत्रका पाठ करेगा, वह बहुत शीघ्र ही तापजनक जन्म-मृत्युके भयका परित्याग कर श्रेष्ठ तथा कल्याणप्रद रघुनाथके पदको प्राप्त करेगा॥ ९॥

ॐ

श्रीकृष्णस्तोत्राणि

४७—गोविन्दाष्टकम्

चिदानन्दाकारं श्रुतिसरससारं समरसं
निराधाराधारं भवजलधिपारं परगुणम्।
रमाग्रीवाहारं व्रजवनविहारं हरनुतं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे॥ १॥
महाम्भोधिस्थानं स्थिरचरनिदानं दिविजपं
सुधाधारापानं विहगपतियानं यमरतम्।
मनोज्ञं सुज्ञानं मुनिजननिधानं ध्रुवपदं। सदा०॥ २॥

जो चिदानन्दस्वरूप है, श्रुतिका सुमधुर सार है, समरस है, निराश्रयोंका आश्रय है, संसारसागरका पार करानेवाला है, परगुणाश्रय है, श्रीलक्ष्मीजीके गलेका हार है, वृन्दावनविहारी है तथा भगवान् शंकरसे सम्पूजित है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ १॥ जिसका महासमुद्र आश्रय है, जो चराचरका आदिकारण है, देवोंका संरक्षक है, अमृतपान करानेवाला है, गरुड़ ही जिसका वाहन है,

धिया धीरैर्ध्येयं श्रवणपुटपेयं यतिवरै-
र्महावाक्यैर्ज्ञेयं त्रिभुवनविधेयं विधिपरम्।
मनोमानामेयं सपदि हृदि नेयं नवतनुं। सदा० ॥ ३ ॥

महामायाजालं विमलवनमालं मलहरं
सुभालं गोपालं निहतशिशुपालं शशिमुखम्।
कलातीतं कालं गतिहतमरालं मुररिपुं। सदा० ॥ ४ ॥

नभोबिम्बस्फीतं निगमगणगीतं समगतिं
सुरौघैः सम्प्रीतं दितिजविपरीतं पुरिशयम्।
गिरां मार्गातीतं स्वदितनवनीतं नयकरं। सदा० ॥ ५ ॥

जो यमों (अहिंसा, सत्यादि) में बसा हुआ है, मनोज्ञ है, ज्ञानस्वरूप है, मुनिजनोंका आश्रय है, ध्रुवस्थान है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दको सदैव भज॥ २॥ धीर पुरुषोंद्वारा बुद्धिसे जिनका ध्यान किया जाता है और कर्णपुटोंसे पान किया जाता है, योगिजन जिसे महावाक्योंद्वारा जान पाते हैं, जो त्रिलोकीका विधाता और विधिवाक्योंसे परे है, जिसे मन प्रमाणोंद्वारा नहीं जान सकता तथा जो हृदयमें शीघ्र ही धारण करनेयोग्य है एवं नूतन तनुधारी है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ३॥ जिसका मायारूपी महाजाल है, जिसने निर्मल वनमाला धारण किया है, जो मलका अपहरण करनेवाला है, जिसका सुन्दर भाल है, जो गोपाल है, शिशुपालवधकारी है, जिसका चाँद-सा मुखड़ा है, जो सम्पूर्ण कलातीत है, काल है, अपनी सुन्दर गतिसे हंसका भी विजय करनेवाला है, मुर दैत्यका शत्रु है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ४॥ जो आकाशबिम्बके समान व्यापक है, जिसका शास्त्र संकीर्तन करते हैं, जो सबकी समान गति है, देवताओंसे परम प्रसन्न तथा दैत्योंका विरोधी है, बुद्धिरूपी गुहामें स्थित है, वाणीकी गतिसे

परेशं पद्मेशं शिवकमलजेशं शिवकरं
द्विजेशं देवेशं तनुकुटिलकेशं कलिहरम्।
खगेशं नागेशं निखिलभुवनेशं नगधरं। सदा० ॥ ६ ॥

रमाकान्तं कान्तं भवभयभयान्तं भवसुखं
दुराशान्तं शान्तं निखिलहृदि भान्तं भुवनपम्।
विवादान्तं दान्तं दनुजनिचयान्तं सुचरितं। सदा० ॥ ७ ॥

जगज्ज्येष्ठं श्रेष्ठं सुरपतिकनिष्ठं क्रतुपतिं
बलिष्ठं भूयिष्ठं त्रिभुवनवरिष्ठं वरवहम्।
स्वनिष्ठं धर्मिष्ठं गुरुगुणगरिष्ठं गुरुवरं। सदा० ॥ ८ ॥

बाहर है, नवनीतका आस्वादन करनेवाला है तथा नीतिका संस्थापक है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ५॥ जो परमेश्वर है, लक्ष्मीपति है, शिव और ब्रह्माका भी स्वामी है, कल्याणकारी है, द्विज और देवोंका ईश्वर है, महीन और घुँघराले केशोंवाला है, कलिमलहारी है, आकाशसंचारी सूर्यका भी शासक है, धरातलधारी शेष है, सम्पूर्ण भुवनमण्डलका स्वामी है, गोवर्धनधारी है! अरे, उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ६॥ जो लक्ष्मीपति है, विमल द्युति है, भवभयहारी है, संसारका सुख है, दुराशाका काल है, शान्त है, सम्पूर्ण हृदयोंमें भासमान है, त्रिभुवनका प्रतिपालक है, विवादका जहाँ अन्त हो जाता है, दमशील है, दैत्य-दल-दलन है, सुन्दर चरित्रवाला है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ७॥ जो संसारमें सबसे बड़ा है, श्रेष्ठ है, सुरराज इन्द्रका अनुज (वामन) है, यज्ञपति है, बलिष्ठ है, भूयिष्ठ है, त्रिभुवनमें सर्वश्रेष्ठ है, वरदायक है, आत्मनिष्ठ है, धर्मिष्ठ है, महान् गुणोंसे गौरवयुक्त है, गुरुवर है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ८॥

गदापाणेरेतद्दुरितदलनं दुःखशमनं
विशुद्धात्मा स्तोत्रं पठति मनुजो यस्तु सततम्।
स भुक्त्वा भोगौघं चिरमिह ततोऽपास्तवृजिनः
परं विष्णोः स्थानं व्रजति खलु वैकुण्ठभुवनम्॥ ९॥

इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं गोविन्दाष्टकं सम्पूर्णम्।

४८—श्रीगोविन्दाष्टकम्

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशं
गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलमनायासं परमायासम्।
मायाकल्पितनानाकारमनाकारं भुवनाकारं
क्ष्माया नाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ १॥

जो विशुद्धात्मा पुरुष गदापाणि गोविन्दके इस पापनाशन, दुःखदलन स्तोत्रको निरन्तर पढ़ता है, वह चिरकालपर्यन्त नाना भोगोंको भोगकर, पापोंसे रहित होकर भगवान् विष्णुके परमपावन धाम वैकुण्ठलोकको अवश्यमेव जाता है॥ ९॥

जो सत्य, ज्ञानस्वरूप, अनन्त एवं नित्य हैं, आकाशसे भिन्न होनेपर भी परम आकाशस्वरूप हैं, जो व्रजके प्रांगणमें चलते हुए चपल हो रहे हैं, परिश्रमसे रहित होकर भी बहुत थके-से हो जाते हैं, आकारहीन होनेपर भी मायानिर्मित नाना स्वरूप धारण किये विश्वरूपसे प्रकट हैं और पृथ्वीनाथ होकर भी अनाथ (बिना स्वामीके) हैं, उन परमानन्दमय गोविन्दकी वन्दना करो॥ १॥

मृत्स्नामत्सीहेति * यशोदाताडनशैशवसंत्रासं
व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालिम्।
लोकत्रयपुरमूलस्तम्भं लोकालोकमनालोकं
लोकेशं परमेशं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ २॥

त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नं क्षितिभारघ्नं भवरोगघ्नं
कैवल्यं नवनीताहारमनाहारं भुवनाहारम्।
वैमल्यस्फुटचेतोवृत्तिविशेषाभासमनाभासं
शैवं केवलशान्तं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ३॥

गोपालं भूलीलाविग्रहगोपालं कुलगोपालं
गोपीखेलनगोवर्धनधृतिलीलालालितगोपालम्।

'क्या तू यहाँ मिट्टी खा रहा है?' यह पूछती हुई यशोदाद्वारा मारे जानेका जिन्हें शैशवकालोचित भय हो रहा है, मिट्टी न खानेका प्रमाण देनेके लिये जो मुँह फैलाकर उसमें लोकालोक पर्वतसहित चौदह भुवन दिखला देते हैं, त्रिभुवनरूपी नगरके जो आधारस्तम्भ हैं, आलोकसे परे (अर्थात् दर्शनातीत) होनेपर भी जो विश्वके आलोक (प्रकाश) हैं, उन परमानन्दस्वरूप, लोकनाथ, परमेश्वर गोविन्दको नमस्कार करो॥ २॥ जो दैत्यवीरोंके नाशक, पृथ्वीका भार हरनेवाले और संसाररोगको मिटा देनेवाले कैवल्य (मोक्ष) पद हैं, आहाररहित होकर भी नवनीतभोजी एवं विश्वभक्षी हैं, आभाससे पृथक् होनेपर भी मलरहित होनेके कारण स्वच्छ चित्तकी वृत्तिमें जिनका विशेषरूपसे आभास मिलता है, जो अद्वितीय, शान्त एवं कल्याणस्वरूप हैं, उन परमानन्दमय गोविन्दको प्रणाम करो॥ ३॥ जो गौओंके पालक हैं, जिन्होंने

---

* पाठान्तरम्—मृत्स्नामत्सि किमीह।

गोभिर्निगदितगोविन्दस्फुटनामानं बहुनामानं
गोपीगोचरदूरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ४॥
गोपीमण्डलगोष्ठीभेदं भेदावस्थमभेदाभं
शश्वद्गोखुरनिर्धूतोद्धतधूलीधूसरसौभाग्यम् ।
श्रद्धाभक्तिगृहीतानन्दमचिन्त्यं चिन्तितसद्भावं
चिन्तामणिमहिमानं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ५॥
स्नानव्याकुलयोषिद्वस्त्रमुपादायागमुपारूढं
व्यादित्सन्तीरथ दिग्वस्त्रा ह्युपदातुमुपाकर्षन्तम्।
निर्धूतद्वयशोकविमोहं बुद्धं बुद्धेरन्तःस्थं
सत्तामात्रशरीरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ६॥

पृथ्वीपर लीला करनेके निमित्त गोपाल-शरीर धारण किया है, जो वंशद्वारा भी गोपाल (ग्वाला) हो चुके हैं, गोपियोंके साथ खेल करते हुए गोवर्धनधारणकी लीलासे जिन्होंने गोपजनोंका पालन किया था, गौओंने स्पष्टरूपसे जिनका गोविन्द नाम बतलाया था, जिनके अनेकों नाम हैं, उन गोप तथा गोचर (इन्द्रियोंके विषय) से पृथक् रहनेवाले परमानन्दरूप गोविन्दको प्रणाम करो॥ ४॥ जो गोपीजनोंकी गोष्ठीके भीतर प्रवेश करनेवाले हैं, भेदावस्थामें रहकर भी अभिन्न भासित होते हैं, जिन्हें सदा गायोंके खुरसे ऊपर उड़ी हुई धूलिद्वारा धूसरित होनेका सौभाग्य प्राप्त है, जो श्रद्धा और भक्ति रखनेसे आनन्दित होते हैं, अचिन्त्य होनेपर भी जिनके सद्भावका चिन्तन किया गया है, उन चिन्तामणिके समान महिमावाले परमानन्दमय गोविन्दकी वन्दना करो॥ ५॥ स्नानमें व्यग्र हुई गोपांगनाओंके वस्त्र लेकर जो वृक्षपर चढ़ गये थे और जब उन्होंने वस्त्र लेना चाहा तब देनेके लिये उन्हें पास बुलाने लगे, [ऐसा होनेपर भी] जो शोक-मोह दोनोंको ही मिटानेवाले ज्ञानस्वरूप एवं बुद्धिके भी परवर्ती हैं, सत्तामात्र ही जिनका शरीर है ऐसे परमानन्दस्वरूप

कान्तं कारणकारणमादिमनादिं कालमनाभासं
कालिन्दीगतकालियशिरसि मुहुर्नृत्यन्तं नृत्यन्तम्।
कालं कालकलातीतं कलिताशेषं कलिदोषघ्नं
कालत्रयगतिहेतुं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ७॥

वृन्दावनभुवि वृन्दारकगणवृन्दाराध्यं वन्देऽहं
कुन्दाभामलमन्दस्मेरसुधानन्दं सुहृदानन्दम्।
वन्द्याशेषमहामुनिमानसवन्द्यानन्दपदद्वन्द्वं
वन्द्याशेषगुणाब्धिं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ८॥

गोविन्दाष्टकमेतदधीते गोविन्दार्पितचेता यो
गोविन्दाच्युत माधवविष्णो गोकुलनायक कृष्णेति।

गोविन्दको नमस्कार करो॥ ६॥ जो कमनीय, कारणोंके भी आदिकारण, अनादि और आभासरहित कालस्वरूप होकर भी यमुनाजलमें रहनेवाले कालियनागके मस्तकपर बारंबार नृत्य कर रहे थे, जो कालरूप होनेपर भी कालकी कलाओंसे अतीत और सर्वज्ञ हैं, जो त्रिकालगतिके कारण और कलियुगीय दोषोंको नष्ट करनेवाले हैं, उन परमानन्दस्वरूप गोविन्दको प्रणाम करो॥ ७॥ जो वृन्दावनकी भूमिपर देववृन्द तथा वृन्दा नामकी वनदेवताके आराध्य देव हैं, जिनकी कुन्दके समान निर्मल मन्द मुसकानमें सुधाका आनन्द भरा है, जो मित्रोंके आनन्ददायी हैं उन भगवान्‌की मैं वन्दना करता हूँ। जिनका आमोदमय चरणयुगल समस्त वन्दनीय महामुनियोंके भी हृदयका वन्दनीय है, उन सम्पूर्ण शुभ गुणोंके सागर परमानन्दमय गोविन्दको नमस्कार करो॥ ८॥ जो भगवान् गोविन्दमें अपना चित्त लगा 'गोविन्द! अच्युत! माधव!

गोविन्दाङ्घ्रिसरोजध्यानसुधाजलधौतसमस्ताघो
गोविन्दं परमानन्दामृतमन्तःस्थं स समभ्येति॥ ९॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीगोविन्दाष्टकं सम्पूर्णम्।

४९—अच्युताष्टकम्

अच्युतं केशवं रामनारायणं
कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं
जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे॥ १॥

अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं
माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम्।
इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं
देवकीनन्दनं नन्दजं सन्दधे॥ २॥

विष्णो! गोकुलनायक! कृष्ण!' इत्यादि उच्चारणपूर्वक उनके चरणकमलोंके ध्यानरूपी सुधासलिलसे अपना समस्त पाप धोकर इस गोविन्दाष्टकका पाठ करता है, वह अपने अन्तःकरणमें विद्यमान परमानन्दामृतरूप गोविन्दको प्राप्त कर लेता है॥ ९॥

अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपिकावल्लभ तथा जानकीनायक रामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ॥ १॥ अच्युत, केशव, सत्यभामापति, लक्ष्मीपति, श्रीधर, राधिकाजीद्वारा आराधित, लक्ष्मीनिवास, परम सुन्दर, देवकीनन्दन, नन्दकुमारका चित्तसे ध्यान

विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे
रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये।
वल्लवीवल्लभायार्चितायात्मने
कंसविध्वंसिने वंशिने ते नमः॥ ३॥

कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण
श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे।
अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज
द्वारकानायक द्रौपदीरक्षक॥ ४॥

राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो
दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणः।
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितो-
ऽगस्त्यसम्पूजितो राघवः पातु माम्॥ ५॥

करता हूँ॥ २॥ जो विभु हैं, विजयी हैं, शंख-चक्रधारी हैं, रुक्मिणीजीके परम प्रेमी हैं, जानकीजी जिनकी धर्मपत्नी हैं तथा जो व्रजांगनाओंके प्राणाधार हैं उन परमपूज्य, आत्मस्वरूप, कंसविनाशक मुरलीमनोहर आपको नमस्कार करता हूँ॥ ३॥ हे कृष्ण! हे गोविन्द! हे राम! हे नारायण! हे रमानाथ! हे वासुदेव! हे अजेय! हे शोभाधाम! हे अच्युत! हे अनन्त! हे माधव! हे अधोक्षज (इन्द्रियातीत)! हे द्वारकानाथ! हे द्रौपदीरक्षक! (मुझपर कृपा कीजिये)॥ ४॥ जो राक्षसोंपर अति कुपित हैं, श्रीसीताजीसे सुशोभित हैं, दण्डकारण्यकी भूमिकी पवित्रताके कारण हैं, श्रीलक्ष्मणजीद्वारा अनुगत हैं, वानरोंसे सेवित हैं और श्रीअगस्त्यजीसे पूजित हैं, वे रघुवंशी श्रीरामचन्द्रजी मेरी रक्षा करें॥ ५॥

धेनुकारिष्टकानिष्टकृद्द्वेषिहा
केशिहा कंसहृद्वंशिकावादकः।
पूतनाकोपकः सूरजाखेलनो
बालगोपालकः पातु मां सर्वदा॥ ६॥

विद्युदुद्योतवत्प्रस्फुरद्वाससं
प्रावृडम्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम्।
वन्यया मालया शोभितोरःस्थलं
लोहिताङ्घ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे॥ ७॥

कुञ्चितैः कुन्तलैर्भ्राजमाननं
रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयोः।
हारकेयूरकं कङ्कणप्रोज्ज्वलं
किङ्किणीमञ्जुलं श्यामलं तं भजे॥ ८॥

धेनुक और अरिष्टासुर आदिका अनिष्ट करनेवाले, शत्रुओंका ध्वंस करनेवाले, केशी और कंसका वध करनेवाले, वंशीको बजानेवाले, पूतनापर कोप करनेवाले, यमुनातटविहारी बालगोपाल मेरी सदा रक्षा करें॥ ६॥ विद्युत्प्रकाशके सदृश जिनका पीताम्बर विभासित हो रहा है, वर्षाकालीन मेघोंके समान जिनका अति शोभायमान शरीर है, जिनका वक्षःस्थल वनमालासे विभूषित है और चरणयुगल अरुणवर्ण हैं, उन कमलनयन श्रीहरिको भजता हूँ॥ ७॥ जिनका मुख घुँघराली अलकोंसे सुशोभित है, मस्तकपर मणिमय मुकुट शोभा दे रहा है तथा कपोलोंपर कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं; उज्ज्वल हार, केयूर (बाजूबन्द), कंकण और किंकिणीकलापसे सुशोभित उन मंजुलमूर्ति श्रीश्यामसुन्दरको भजता हूँ॥ ८॥

विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां सूकरमुखां
विना यस्य ज्ञानं जनिमृतिभयं याति जनता।
विना यस्य स्मृत्या कृमिशतजनिं याति स विभुः। शरण्यो० ॥ ६ ॥
नरातङ्कोत्तङ्कः शरणशरणो भ्रान्तिहरणो
घनश्यामः कामो व्रजशिशुवयस्योऽर्जुनसखः।
स्वयम्भूर्भूतानां जनक उचिताचारसुखदः। शरण्यो० ॥ ७ ॥
यदा धर्मग्लानिर्भवति जगतां क्षोभकरणी
तदा लोकस्वामी प्रकटितवपुः सेतुधृगजः।
सतां धाता स्वच्छो निगमगणगीतो व्रजपतिः। शरण्यो० ॥ ८ ॥

दैत्योंको जीतते हैं, जिनकी कृतिके बिना किसी कार्यमें कोई भी स्वतन्त्र नहीं है तथा जो कवियोंके कवित्वाभिमानको और विजयियोंके विजयाभिमानको हर लेते हैं, वे शरणागतवत्सल निखिल भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ ५॥ जिनका ध्यान किये बिना मनुष्य सूकरादि पशु-योनियोंमें पड़ते हैं, जिनके ज्ञान बिना जनता जन्म-मरणके भयको प्राप्त होती है तथा जिनका स्मरण किये बिना सैकड़ों कीट-पतंगादि योनियोंमें गिरना पड़ता है, वे शरणागतवत्सल, निखिल भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ ६॥ जो प्राणियोंके भयको दूर करनेवाले हैं, शरणागतोंको शरण देनेवाले तथा भ्रमको दूर करनेवाले हैं, मेघश्याम हैं, सुन्दर हैं, व्रजबालकोंके समवयस्क साथी और अर्जुनके सखा हैं, स्वयम्भू हैं, समस्त प्राणियोंके पिता हैं तथा उचित आचरणोंद्वारा सुख देनेवाले हैं, वे शरणागतवत्सल, निखिल भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ ७॥ जब संसारको क्षुब्ध कर देनेवाला धर्मका ह्रास होता है, उस समय जो लोक-मर्यादाकी रक्षा करनेवाले लोकेश्वर, संत-प्रतिपालक, वेदवर्णित शुद्ध एवं अजन्मा भगवान् उनकी रक्षाके लिये

इति हरिरखिलात्माराधितः शङ्करेण
श्रुतिविशदगुणोऽसौ मातृमोक्षार्थमाद्यः।
यतिवरनिकटे श्रीयुक्त आविर्बभूव
स्वगुणवृत उदारः शङ्खचक्राब्जहस्तः॥ ९॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं कृष्णाष्टकं सम्पूर्णम्।

५१—श्रीकृष्णाष्टकम्

भजे व्रजैकमण्डनं समस्तपापखण्डनं
स्वभक्तचित्तरञ्जनं सदैव नन्दनन्दनम्।
सुपिच्छगुच्छमस्तकं सुनादवेणुहस्तकं
अनङ्गरङ्गसागरं नमामि कृष्णनागरम्॥ १॥

शरीर धारण करते हैं, वे ही शरणागतवत्सल, निखिल भुवनेश्वर व्रजराज श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ ८॥ इस प्रकार अपनी माताकी मुक्तिके लिये श्रीशंकराचार्यजीने श्रुतिकथित गुणोंवाले, निखिलात्मा आदि नारायण हरिकी आराधना की तो अपने उदार गुणोंसे युक्त श्रीभगवान् लक्ष्मीजीसहित उनके निकट शंख, चक्र, पद्मादि लिये प्रकट हो गये॥ ९॥

व्रज-भूमिके एकमात्र आभूषण, समस्त पापोंको नष्ट करनेवाले तथा अपने भक्तोंके चित्तोंको आनन्दित करनेवाले नन्दनन्दनको सर्वदा भजता हूँ, जिनके मस्तकपर मनोहर मोर-पंखका मुकुट है, हाथोंमें सुरीली बाँसुरी है तथा जो काम-कलाके सागर हैं, उन नटनागर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ॥ १॥

मनोजगर्वमोचनं विशाललोललोचनं
विधूतगोपशोचनं नमामि पद्मलोचनम्।
करारविन्दभूधरं स्मितावलोकसुन्दरं
महेन्द्रमानदारणं नमामि कृष्णवारणम्॥ २॥

कदम्बसूनकुण्डलं सुचारुगण्डमण्डलं
व्रजाङ्गनैकवल्लभं नमामि कृष्णदुर्लभम्।
यशोदया समोदया सगोपया सनन्दया
युतं सुखैकदायकं नमामि गोपनायकम्॥ ३॥

सदैव पादपङ्कजं मदीयमानसे निजं
दधानमुक्तमालकं नमामि नन्दबालकम्।
समस्तदोषशोषणं समस्तलोकपोषणं
समस्तगोपमानसं नमामि नन्दलालसम्॥ ४॥

कामदेवका मान मर्दन करनेवाले, बड़े-बड़े सुन्दर नेत्रोंवाले तथा व्रजगोपोंका शोक हरनेवाले कमलनयन भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने अपने करकमलोंपर गिरिराजको धारण किया था तथा जिनकी मुसकान और चितवन अति मनोहर है, देवराज इन्द्रका मान मर्दन करनेवाले उन श्रीकृष्णरूपी गजराजको नमस्कार करता हूँ॥ २॥ जिनके कानोंमें कदम्ब-पुष्पोंके कुण्डल हैं, परम सुन्दर कपोल हैं तथा व्रजबालाओंके जो एकमात्र प्राणाधार हैं, उन दुर्लभ कृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ; जो गोपगण और नन्दजीके सहित अतिप्रसन्ना यशोदाजीसे युक्त हैं और एकमात्र आनन्ददायक हैं, उन गोपनायक गोपालको नमस्कार करता हूँ॥ ३॥ जिन्होंने अपने चरण-कमलोंको मेरे मनरूपी सरोवरमें स्थापित कर रखा है, उन अति सुन्दर

भुवो भरावतारकं भवाब्धिकर्णधारकं
यशोमतीकिशोरकं नमामि चित्तचोरकम्।
दृगन्तकान्तभङ्गिनं सदासदालसङ्गिनं
दिने दिने नवं नवं नमामि नन्दसम्भवम्॥ ५॥

गुणाकरं सुखाकरं कृपाकरं कृपापरं
सुरद्विषन्निकन्दनं नमामि गोपनन्दनम्।
नवीनगोपनागरं नवीनकेलिलम्पटं
नमामि मेघसुन्दरं तडित्प्रभालसत्पटम्॥ ६॥

समस्तगोपनन्दनं हृदम्बुजैकमोदनं
नमामि कुञ्जमध्यगं प्रसन्नभानुशोभनम्।
निकामकामदायकं दृगन्तचारुसायकं
रसालवेणुगायकं नमामि कुञ्जनायकम्॥ ७॥

अलकोंवाले नन्दकुमारको नमस्कार करता हूँ तथा समस्त दोषोंको दूर करनेवाले समस्त लोकोंका पालन करनेवाले और समस्त व्रजगोपोंके हृदय तथा नन्दजीकी लालसारूप श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ॥ ४॥ भूमिका भार उतारनेवाले संसारसागरके कर्णधार मनोहर यशोदाकुमारको नमस्कार करता हूँ; अति कमनीय कटाक्षवाले, सदैव सुन्दर भूषण धारण करनेवाले नित्य नूतन नन्दकुमारको नमस्कार करता हूँ॥ ५॥ गुणोंके भण्डार, सुखसागर, कृपानिधान और कृपालु गोपालको, जो देव शत्रुओंको ध्वंस करनेवाले हैं, नमस्कार करता हूँ; नित्य नूतन लीलाविहारी, मेघश्याम नटनागर गोपालको, जो बिजलीकी-सी आभावाला अति सुन्दर पीताम्बर धारण किये हुए हैं, नमस्कार करता हूँ॥ ६॥ जो समस्त गोपोंको आनन्दित करनेवाले और

विदग्धगोपिकामनोमनोज्ञतल्पशायिनं
नमामि कुञ्ज कानने प्रवृद्धवह्निपायिनम्।
किशोरकान्ति रञ्जितं दृगञ्जनं सुशोभितं
गजेन्द्रमोक्षकारिणं नमामि श्रीविहारिणम्॥ ८॥
यदा तदा यथा तथा तथैव कृष्णसत्कथा
मया सदैव गीयतां तथा कृपा विधीयताम्।
प्रमाणिकाष्टकद्वयं जपत्यधीत्य यः पुमान्
भवेत्स नन्दनन्दने भवे भवे सुभक्तिमान्॥ ९॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं श्रीकृष्णाष्टकं सम्पूर्णम्।

हृदयकमलको विकसित करनेवाले, देदीप्यमान सूर्यके समान शोभायमान हैं, उन कुंजमध्यवर्ती श्यामसुन्दरको नमस्कार करता हूँ। जो कामनाओंको भलीभाँति पूर्ण करनेवाले हैं, जिनकी चारु चितवन बाणोंके समान है, सुमधुर वेणु बजाकर गान करनेवाले उन कुंजनायकको नमस्कार करता हूँ॥ ७॥ चतुर गोपिकाओंके मनरूपी सुकोमल शय्यापर शयन करनेवाले तथा कुंजवनमें बढ़ती हुई दावाग्निको पान कर जानेवाले, किशोरावस्थाकी कान्तिसे सुशोभित अंजनयुक्त सुन्दर नेत्रोंवाले, गजेन्द्रको ग्राहसे मुक्त करनेवाले, श्रीजीके साथ विहार करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ॥ ८॥ प्रभो! मेरे ऊपर ऐसी कृपा हो कि जब-तब जैसी भी परिस्थितिमें रहूँ, सदा आपकी सत्कथाओंका गान करूँ। जो पुरुष इन दोनों प्रामाणिक अष्टकोंका पाठ या जप करेगा वह जन्म-जन्ममें नन्दनन्दन श्यामसुन्दरकी भक्तिसे युक्त होगा॥ ९॥

५२—भगवत्स्तुतिः

भीष्म उवाच

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा
भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं
प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः॥ १॥

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥ २॥

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-
कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये।
मम निशितशरैर्विभिद्यमान-
त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा॥ ३॥

भीष्मजी बोले—जो निजानन्दमें मग्न है और कभी विहार (लीला) करनेकी इच्छासे प्रकृतिको स्वीकार करता है तब उससे संसारका प्रवाह चलता है ऐसे भूमास्वरूप, यदुश्रेष्ठ भगवान् कृष्णमें मैंने अपनी तृष्णारहित बुद्धि समर्पित कर दी है॥ १॥ त्रिभुवनसुन्दर तमालवर्ण सूर्यकिरणोंके समान उज्ज्वल और पवित्र वस्त्र धारण करनेवाले तथा जिनका मुखकमल अलकावलीसे आवृत है, उन अर्जुन-सखामें मेरी निष्काम प्रीति हो॥ २॥ युद्धमें घोड़ोंकी टापसे उड़ी हुई रजसे धूसरित तथा चारों ओर छिटकी हुई

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये
निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य।
स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा
हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु॥ ४॥

व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य
स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या।
कुमतिमहरदात्मविद्यया य-
श्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु॥ ५॥

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-
मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु-
र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः॥ ६॥

अलकोंवाले, परिश्रमजन्य पसीनेकी बूँदोंसे सुशोभित मुखवाले और मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे विदीर्ण हुई त्वचावाले, सुन्दर कवचधारी कृष्णमें मेरी आत्मा प्रवेश करे॥ ३॥ सखाके वचनोंको सुनकर शीघ्र ही अपनी और विपक्षियोंकी सेनाओंके बीचमें रथको खड़ा करके अपने भृकुटि-विलाससे विपक्षी सैनिकोंकी आयुको हरनेवाले पार्थ-सखामें मेरी प्रीति हो॥ ४॥ दूर खड़ी सेनाके मुखका निरीक्षण करके स्वजन-वधमें दोषबुद्धिसे निवृत्त हुए अर्जुनकी कुमतिको जिसने आत्मविद्या (गीता-ज्ञान) द्वारा हर लिया था, उस परमपुरुष (कृष्ण)के चरणोंमें मेरी प्रीति हो॥ ५॥ मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये, अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर रथसे उतर पड़े और सिंह जैसे हाथीको मारने दौड़ता है उसी तरह चक्रको लेकर पृथ्वी कँपाते हुए कृष्ण (मेरी ओर) दौड़े, उस समय

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः
क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे।
रसभमभिससार मद्वधार्थं
स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः॥ ७॥

वेजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे
धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये।
भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षो-
र्यमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम्॥ ८॥

ललितगतिविलासवल्गुहास-
प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः
प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः॥ ९॥

शीघ्रताके कारण उनका दुपट्टा (पृथ्वीको सान्त्वना देनेके लिये) गिर पड़ा था॥ ६॥ मुझ आततायीके तीक्ष्ण बाणोंसे विदीर्ण होकर, फटे हुए कवचवाले, घाव और रुधिरसे सने हुए, जो भगवान् मुकुन्द मुझे हठपूर्वक मारनेको दौड़े, वे मेरी गति हों॥ ७॥ अर्जुनके रथमें—चाबुक लेकर और घोड़ोंकी लगाम पकड़कर बैठे हुए (अहा!) ऐसी शोभासे दर्शनीय भगवान्में मुझ मरणाकांक्षीकी प्रीति हो; जिनका दर्शन करके इस युद्धमें मरे हुए वीर भगवत्-स्वरूपको प्राप्त हो गये हैं॥ ८॥ ललित गति, विलास, मनोहर हास्य और प्रेमपूर्ण निरीक्षणके समय बहुत मान धारण करनेवाली तथा (कृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर) उन्मत्त होकर भगवत्-चरित्रोंका अनुकरण करनेवाली गोपवधुएँ जिनके स्वरूपको निश्चय ही प्राप्त हो गयीं॥ ९॥

मुनिगणनृपवर्यसङ्कुलेऽन्तः-

सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम्।
अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो
मम दृशिगोचर एष आविरात्मा॥ १०॥

तमिममहमजं शरीरभाजां
हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम्।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं
समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः॥ ११॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे नवमेऽध्याये
भीष्मकृता भगवत्स्तुतिः सम्पूर्णा।

युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें, मुनिगण और नृपतियोंके समक्ष जिनकी अग्रपूजा हुई, अहो! ऐसे दर्शनीय भगवान् ही ये मेरी दृष्टिके सामने प्रकट हुए हैं॥ १०॥ मैं भेद और मोहसे रहित होकर अपने ही रचे हुए प्रत्येक शरीरधारीके हृदयमें स्थित सूर्यकी तरह एक होते हुए भी नाना दृष्टिसे अनेक रूप दीखनेवाले और जन्मरहित इस परमात्मा (कृष्ण) की शरणमें जाता हूँ।॥ ११॥

५३—गोविन्ददामोदरस्तोत्रम्

अग्रे कुरूणामथ पाण्डवानां दुःशासनेनाहृतवस्त्रकेशा।
कृष्णा तदाक्रोशदनन्यनाथा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १॥
श्रीकृष्ण विष्णो मधुकैटभारे भक्तानुकम्पिन् भगवन् मुरारे।
त्रायस्व मां केशव लोकनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २॥
विक्रेतुकामाखिलगोपकन्या मुरारिपादार्पितचित्तवृत्तिः।
दध्यादिकं मोहवशादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३॥
उलूखले सम्भृततण्डुलांश्च संघट्टयन्त्यो मुसलैः प्रमुग्धाः।
गायन्ति गोप्यो जनितानुरागा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४॥
कदाचित्कराम्भोजपुटे निषण्णं क्रीडाशुकं किंशुकरक्ततुण्डम्।
अध्यापयामास सरोरुहाक्षी गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५॥

[जिस समय] कौरव और पाण्डवोंके सामने भरी सभामें दुःशासनने द्रौपदीके वस्त्र और बालोंको पकड़कर खींचा, उस समय जिसका कोई दूसरा नाथ नहीं है ऐसी द्रौपदीने रोकर पुकारा—'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'॥ १॥ 'हे श्रीकृष्ण! हे विष्णो! हे मधुकैटभको मारनेवाले! हे भक्तोंके ऊपर अनुकम्पा करनेवाले! हे भगवन्! हे मुरारे! हे केशव! हे लोकेश्वर! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो'॥ २॥ जिनकी चित्तवृत्ति मुरारिके चरणकमलोंमें लगी हुई है, वे सभी गोपकन्याएँ दूध-दही बेचनेकी इच्छासे घरसे चलीं। उनका मन तो मुरारिके पास था; अतः प्रेमवश सुध-बुध भूल जानेके कारण 'दही लो दही' इसके स्थानपर जोर-जोरसे 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' आदि पुकारने लगीं॥ ३॥ ओखलीमें धान भरे हुए हैं, उन्हें मुग्धा गोपरमणियाँ मूसलोंसे कूट रही हैं और कूटते-कूटते कृष्णप्रेममें विभोर होकर 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इस प्रकार गायन करती जाती हैं॥ ४॥ कोई कमलनयनी बाला मनोविनोदके लिये पाले हुए

गृहे गृहे गोपवधूसमूहः प्रतिक्षणं पिञ्जरसारिकाणाम्।
स्खलद्गिरं वाचयितुं प्रवृत्तो गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६ ॥
पर्य्यङ्किकाभाजमलं कुमारं प्रस्वापयन्त्योऽखिलगोपकन्याः।
जगुः प्रबन्धं स्वरतालबन्धं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ७ ॥
रामानुजं वीक्षणकेलिलोलं गोपी गृहीत्वा नवनीतगोलम्।
आबालकं बालकमाजुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ८ ॥
विचित्रवर्णाभरणाभिरामेऽभिधेहि वक्त्राम्बुजराजहंसि।
सदा मदीये रसनेऽग्ररङ्गे गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ९ ॥
अङ्काधिरूढं शिशुगोपगूढं स्तनं धयन्तं कमलैककान्तम्।
सम्बोधयामास मुदा यशोदा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १० ॥

अपने करकमलपर बैठे किंशुककुसुमके समान रक्तवर्ण चोंचवाले सुग्गेको पढ़ा रही थी—पढ़ो तो तोता! 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'॥ ५ ॥ प्रत्येक घरमें समूह-की-समूह गोपांगनाएँ पिंजरोंमें पाली हुई अपनी मैनाओंसे उनकी लड़खड़ाती हुई वाणीको क्षण-क्षणमें 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इत्यादि रूपसे कहलानेमें लगी रहती थीं॥ ६ ॥ पालनेमें पौढ़े हुए अपने नन्हें बच्चेको सुलाती हुई सभी गोपकन्याएँ ताल-स्वरके साथ 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इस पदको ही गाती जाती थीं॥ ७ ॥ हाथमें माखनका गोला लेकर मैया यशोदाने आँख-मिचौनीकी क्रीडामें व्यस्त बलरामके छोटे भाई कृष्णको बालकोंके बीचसे पकड़कर पुकारा—'अरे गोविन्द! अरे दामोदर! अरे माधव!'॥ ८ ॥ विचित्र वर्णमय आभरणोंसे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होनेवाली हे मुखकमलकी राजहंसीरूपिणी मेरी रसने! तू सर्वप्रथम 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इस ध्वनिका ही विस्तार कर॥ ९ ॥ अपनी गोदमें बैठकर दूध पीते हुए बाल-गोपालरूपधारी भगवान् लक्ष्मीकान्तको लक्ष्य करके प्रेमानन्दमें मग्न हुई यशोदामैया इस प्रकार बुलाया करती थीं—'ऐ मेरे गोविन्द! ऐ मेरे दामोदर!

क्रीडन्तमन्तर्व्रजमात्मजं स्वं समं वयस्यैः पशुपालबालैः।
प्रेम्णा यशोदा प्रजुहाव कृष्णं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ११॥
यशोदया गाढमुलूखलेन गोकण्ठपाशेन निबध्यमानः।
रुरोद मन्दं नवनीतभोजी गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १२॥
निजाङ्गणे कङ्कणकेलिलोलं गोपी गृहीत्वा नवनीतगोलम्।
आमर्दयत्पाणितलेन नेत्रे गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १३॥
गृहे गृहे गोपवधूकदम्बाः सर्वे मिलित्वा समवाययोगे।
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १४॥
मन्दारमूले वदनाभिरामं बिम्बाधरे पूरितवेणुनादम्।
गोगोपगोपीजनमध्यसंस्थं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १५॥

ऐ मेरे माधव! जरा बोलो तो सही!'॥ १०॥ अपने समवयस्क गोपबालकोंके साथ गोष्ठमें खेलते हुए अपने प्यारे पुत्र कृष्णको यशोदामैयाने अत्यन्त स्नेहके साथ पुकारा—'अरे ओ गोविन्द! ओ दामोदर! अरे माधव! [कहाँ चला गया?]'॥ ११॥ अधिक चपलता करनेके कारण यशोदामैयाने गौ बाँधनेकी रस्सीसे खूब कसकर ओखलीमें उन घनश्यामको बाँध दिया तब तो वे माखनभोगी कृष्ण धीरे-धीरे [आँखें मलते हुए] सिसक-सिसककर 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' कहते हुए रोने लगे॥ १२॥ श्रीनन्दनन्दन अपने ही घरके आँगनमें अपने हाथके कंकणसे खेलनेमें लगे हुए हैं, उसी समय मैयाने धीरेसे जाकर उनके दोनों कमलनयनोंको अपनी हथेलीसे मूँद लिया तथा दूसरे हाथमें नवनीतका गोला लेकर प्रेमपूर्वक कहने लगी—'गोविन्द! दामोदर! माधव [लो देखो, यह माखन खा लो]'॥ १३॥ व्रजके प्रत्येक घरमें गोपांगनाएँ एकत्र होनेका अवसर पानेपर झुंड-की-झुंड आपसमें मिलकर उन मनमोहन माधवके 'गोविन्द, दामोदर, माधव' इन पवित्र नामोंको पढ़ा करती हैं॥ १४॥ जिनका मुखारविन्द बड़ा ही मनोहर है, जो अपने बिम्बके समान अरुण अधरोंपर रखकर

उत्थाय गोप्योऽपररात्रभागे स्मृत्वा यशोदासुतबालकेलिम्।
गायन्ति प्रोच्चैर्दधि मन्थयन्त्यो गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १६॥
जग्धोऽथ दत्तो नवनीतपिण्डो गृहे यशोदा विचिकित्सयन्ती।
उवाच सत्यं वद हे मुरारे गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १७॥
अभ्यर्च्य गेहं युवतिः प्रवृद्धप्रेमप्रवाहा दधि निर्ममन्थ।
गायन्ति गोप्योऽथ सखीसमेता गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १८॥
क्वचित् प्रभाते दधिपूर्णपात्रे निक्षिप्य मन्थं युवती मुकुन्दम्।
आलोक्य गानं विविधं करोति गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १९॥

वंशीकी मधुर ध्वनि कर रहे हैं तथा जो कदम्बके तले गौ, गोप और गोपियोंके मध्यमें विराजमान हैं, उन भगवान्‌का 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इस प्रकार कहते हुए सदा स्मरण करना चाहिये॥ १५॥ व्रजांगनाएँ ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर और उन यशुमतिनन्दनकी बालक्रीडाओंकी बातोंको याद करके दही मथते-मथते 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन पदोंको उच्च स्वरसे गाया करती हैं॥ १६॥ [दधि मथकर माखनका लौंदा रख दिया था। माखनभोगी कृष्णकी दृष्टि पड़ गयी, झट उसे धीरेसे उठा लाये] कुछ खाया, कुछ बाँट दिया। जब ढूँढ़ते-ढूँढ़ते न मिला तो यशोदामैयाने आपपर सन्देह करते हुए पूछा—'हे मुरारे! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! ठीक-ठीक बता, माखनका लौंदा क्या हुआ?'॥ १७॥ जिसके हृदयमें प्रेमकी बाढ़ आ रही है ऐसी माता यशोदा घरको लीपकर दही मथने लगी। तब और सब गोपांगनाएँ तथा सखियाँ मिलकर 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इस पदका गान करने लगीं॥ १८॥ किसी दिन प्रातःकाल ज्यों ही माता यशोदा दहीभरे भाण्डमें मथानीको छोड़कर उठी त्यों ही उसकी दृष्टि शय्यापर बैठे हुए मनमोहन मुकुन्दपर पड़ी। सरकारको देखते ही वह प्रेमसे पगली हो गयी और 'मेरा गोविन्द! मेरा दामोदर! मेरा माधव!' ऐसा कहकर तरह-तरहसे गाने लगी॥ १९॥

क्रीडापरं भोजनमज्जनार्थं हितैषिणी स्त्री तनुजं यशोदा।
आजूहवत् प्रेमपरिप्लुताक्षी गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २०॥
सुखं शयानं निलये च विष्णुं देवर्षिमुख्या मुनयः प्रपन्नाः।
तेनाच्युते तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २१॥
विहाय निद्रामरुणोदये च विधाय कृत्यानि च विप्रमुख्याः।
वेदावसाने प्रपठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २२॥
वृन्दावने गोपगणाश्च गोप्यो विलोक्य गोविन्दवियोगखिन्नाम्।
राधां जगुः साश्रुविलोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २३॥
प्रभातसञ्चारगता नु गावस्तद्रक्षणार्थं तनयं यशोदा।
प्राबोधयत् पाणितलेन मन्दं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २४॥

क्रीडाविहारी मुरारि बालकोंके साथ खेल रहे हैं [अभीतक न स्नान किया है न भोजन] अतः प्रेममें विह्वल हुई माता उन्हें स्नान और भोजनके लिये पुकारने लगी—'अरे ओ गोविन्द! ओ दामोदर! ओ माधव! [आ बेटा! आ! पानी ठंडा हो रहा है जल्दीसे नहा ले और कुछ खा ले]'॥ २०॥ नारद आदि ऋषि 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इस प्रकार प्रार्थना करते हुए घरमें सुखपूर्वक सोये हुए उन पुराणपुरुष बालकृष्णकी शरणमें आये; अतः उन्होंने श्रीअच्युतमें तन्मयता प्राप्त कर ली॥ २१॥ वेदज्ञ ब्राह्मण प्रातःकाल उठकर और अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको पूर्णकर वेदपाठके अन्तमें नित्य ही 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन मंजुल नामोंका कीर्तन करते हैं॥ २२॥ वृन्दावनमें श्रीवृषभानुकुमारीको वनवारीके वियोगसे विह्वल देख गोपगण और गोपियाँ अपने कमलनयनोंसे नीर बहाती हुई 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' आदि कहकर पुकारने लगीं॥ २३॥ प्रातःकाल होनेपर जब गौएँ वनमें चरने चली गयीं तब उनकी रक्षाके लिये यशोदामैया शय्यापर शयन करते हुए बालकृष्णको मीठी-मीठी थपकियोंसे जगाती हुई बोलीं—'बेटा गोविन्द! मुन्ना

प्रवालशोभा इव दीर्घकेशा वाताम्बुपर्णाशनपूतदेहाः।
मूले तरूणां मुनयः पठन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २५॥
एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २६॥
गोपी कदाचिन्मणिपिञ्जरस्थं शुकं वचो वाचयितुं प्रवृत्ता।
आनन्दकन्द व्रजचन्द्र कृष्ण गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २७॥
गोवत्सबालैः शिशुकाकपक्षं बध्नन्तमम्भोजदलायताक्षम्।
उवाच माता चिबुकं गृहीत्वा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २८॥
प्रभातकाले वरवल्लवौघा गोरक्षणार्थं धृतवेत्रदण्डाः।
आकारयामासुरनन्तमाद्यं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २९॥

माधव! लल्लू दामोदर! [उठ, जा गौओंको चरा ला]'॥ २४॥ केवल वायु, जल और पत्तोंके खानेसे जिनके शरीर पवित्र हो गये हैं, ऐसे प्रवालके समान शोभायमान लंबी-लंबी एवं कुछ अरुण रंगकी जटाओंवाले मुनिगण पवित्र वृक्षोंकी छायामें विराजमान होकर निरन्तर 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन नामोंका पाठ करते हैं॥ २५॥ श्रीवनमालीके विरहमें विह्वल हुई व्रजांगनाएँ उनके विषयमें विविध प्रकारकी बातें कहती हुई लोक-लज्जाको तिलांजलि दे बड़े आर्त्त स्वरसे 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' कहकर जोर-जोरसे रोने लगीं॥ २६॥ गोपी श्रीराधिकाजी किसी दिन मणियोंके पिंजड़ेमें पले हुए तोतेसे बार-बार 'आनन्दकन्द! व्रजचन्द्र! कृष्ण! गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन नामोंको बुलवाने लगीं॥ २७॥ कमलनयन श्रीकृष्णचन्द्रको किसी गोपबालककी चोटी बछड़ेके पूँछके बालोंसे बाँधते देख मैया प्यारसे उनकी ठोढ़ीको पकड़कर कहने लगी—'मेरा गोविन्द! मेरा दामोदर! मेरा माधव!'॥ २८॥ प्रातःकाल हुआ, ग्वाल-बालोंकी मित्रमण्डली हाथोंमें बेतकी छड़ी और लाठी ले गौओंको चरानेके लिये निकली। तब वे अपने प्यारे सखा अनन्त आदिपुरुष श्रीकृष्णको

जलाशये कालियमर्दनाय यदा कदम्बादपतन्मुरारिः।
गोपाङ्गनाश्चुक्रुशुरेत्य गोपा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३०॥
अक्रूरमासाद्य यदा मुकुन्दश्चापोत्सवार्थं मथुरां प्रविष्टः।
तदा स पौरैर्जयतीत्यभाषि गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३१॥
कंसस्य दूतेन यदैव नीतौ वृन्दावनान्ताद् वसुदेवसूनू।
रुरोद गोपी भवनस्य मध्ये गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३२॥
सरोवरे कालियनागबद्धं शिशुं यशोदातनयं निशम्य।
चक्रुर्लुठन्त्यः पथि गोपबाला गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३३॥
अक्रूरयाने यदुवंशनाथं संगच्छमानं मथुरां निरीक्ष्य।
ऊचुर्वियोगात् किल गोपबाला गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३४॥

'गोविन्द! दामोदर! माधव!' कह-कहकर बुलाने लगे॥ २९॥ जिस समय कालियनागका मर्दन करनेके लिये कन्हैया कदम्बके वृक्षसे कूदे, उस समय गोपांगनाएँ और गोपगण वहाँ आकर 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' कहकर बड़े जोरसे रोने लगे॥ ३०॥ जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रने कंसके धनुर्यज्ञोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये अक्रूरजीके साथ मथुरामें प्रवेश किया, उस समय पुरवासीजन 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! तुम्हारी जय हो, जय हो' ऐसा कहने लगे॥ ३१॥ जब कंसके दूत अक्रूरजी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और बलरामको वृन्दावनसे दूर ले गये तब अपने घरमें बैठी हुई यशोदाजी 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' कह-कहकर रुदन करने लगीं॥ ३२॥ यशोदानन्दन बालक श्रीकृष्णको कालियह्रदमें कालियनागसे जकड़ा हुआ सुनकर गोपबालाएँ रास्तेमें लोटती हुई 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' कहकर जोरोंसे रुदन करने लगीं॥ ३३॥ अक्रूरके रथपर चढ़कर मथुरा जाते हुए श्रीकृष्णको देख समस्त गोपबालाएँ वियोगके कारण अधीर होकर कहने लगीं—'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव! [हमें छोड़कर तुम कहाँ जाते हो?]'॥ ३४॥

चक्रन्द गोपी नलिनीवनान्ते कृष्णेन हीना कुसुमे शयाना।
प्रफुल्लनीलोत्पललोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३५॥
मातापितृभ्यां परिवार्यमाणा गेहं प्रविष्टा विललाप गोपी।
आगत्य मां पालय विश्वनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३६॥
वृन्दावनस्थं हरिमाशु बुद्ध्वा गोपी गता कापि वनं निशायाम्।
तत्राप्यदृष्ट्वातिभयादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३७॥
सुखं शयाना निलये निजेऽपि नामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः।
ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३८॥
सा नीरजाक्षीमवलोक्य राधां रुरोद गोविन्द वियोगखिन्नाम्।
सखी प्रफुल्लोत्पललोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३९॥

श्रीराधिकाजी श्रीकृष्णके अलग हो जानेपर कमलवनमें कुसुम-शय्यापर सोकर अपने विकसित कमलसदृश लोचनोंसे आँसू बहाती हुई 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' कहकर क्रन्दन करने लगीं॥ ३५॥ माता-पिता आदिसे घिरी हुई श्रीराधिकाजी घरके भीतर प्रवेश कर विलाप करने लगीं कि 'हे विश्वनाथ! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! तुम आकर मेरी रक्षा करो! रक्षा करो!!'॥ ३६॥ रात्रिका समय था, किसी गोपीको भ्रम हो गया कि वृन्दावन-विहारी इस समय वनमें विराजमान हैं। बस, फिर क्या था, झट उसी ओर चल दी, किन्तु जब उसने निर्जन वनमें वनमालीको न देखा तो डरसे काँपती हुई 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' कहने लगी॥ ३७॥ [वनमें न भी जायँ] अपने घरमें ही सुखसे शय्यापर शयन करते हुए भी जो लोग 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इन विष्णुभगवान्‌के पवित्र नामोंको निरन्तर कहते रहते हैं, वे निश्चय ही भगवान्‌की तन्मयता प्राप्त कर लेते हैं॥ ३८॥ कमललोचना राधाको श्रीगोविन्दकी विरहव्यथासे पीड़ित देख कोई सखी अपने प्रफुल्ल कमलसदृश नयनोंसे नीर बहाती हुई 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'

जिह्वे रसज्ञे मधुरप्रिया त्वं सत्यं हितं त्वां परमं वदामि।
आवर्णयेथा मधुराक्षराणि गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४०॥
आत्यन्तिकव्याधिहरं जनानां चिकित्सकं वेदविदो वदन्ति।
संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४१॥
ताताज्ञया गच्छति रामचन्द्रे सलक्ष्मणेऽरण्यचये ससीते।
चक्रन्द रामस्य निजा जनित्री गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४२॥
एकाकिनी दण्डककाननान्तात् सा नीयमाना दशकन्धरेण।
सीता तदाक्रन्ददनन्यनाथा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४३॥*

कहकर रुदन करने लगी॥ ३९॥ हे रसोंको चखनेवाली जिह्वे! तुझे मीठी चीज बहुत अधिक प्यारी लगती है, इसलिये मैं तेरे हितकी एक बहुत ही सुन्दर और सच्ची बात बताता हूँ। तू निरन्तर 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इन मधुर मंजुल नामोंकी आवृत्ति किया कर॥ ४०॥ वेदवेत्ता विद्वान् 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन नामोंको ही लोगोंकी बड़ी-से-बड़ी विकट व्याधिको विच्छेद करनेवाला वैद्य और संसारके आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—तीनों तापोंके नाशका बढ़िया बीज बतलाते हैं॥ ४१॥ अपने पिता दशरथकी आज्ञासे भाई लक्ष्मण और जनकनन्दिनी सीताके साथ श्रीरामचन्द्रजी बीहड़ वनोंके लिये चलने लगे, तब उनकी माता श्रीकौसल्याजी 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! [हे राम! हे रघुनन्दन! हे राघव!]' ऐसा कहकर जोरोंसे विलाप करने लगीं॥ ४२॥ जब राक्षसराज रावण पंचवटीमें जानकीजीको अकेली देख उन्हें हरकर ले जाने लगा, तब रामचन्द्रजीके सिवा जिनका दूसरा कोई स्वामी नहीं है ऐसी सीताजी 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव! [हे राम! हे रघुनन्दन! हे राघव!]' कहकर जोरोंसे रुदन करने लगीं॥ ४३॥

---

* अत्र 'हे राम रघुनन्दन राघवेति' इति पाठान्तरम्।

रामाद्वियुक्ता जनकात्मजा सा विचिन्तयन्ती हृदि रामरूपम्।
रुरोद सीता रघुनाथ पाहि गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४४॥*
प्रसीद विष्णो रघुवंशनाथ सुरासुराणां सुखदुःखहेतो।
रुरोद सीता तु समुद्रमध्ये गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४५॥
अन्तर्जले ग्राहगृहीतपादो विसृष्टविक्लिष्टसमस्तबन्धुः।
तदा गजेन्द्रो नितरां जगाद गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४६॥
हंसध्वजः शङ्खयुतो ददर्श पुत्रं कटाहे प्रपतन्तमेनम्।
पुण्यानि नामानि हरेर्जपन्तं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४७॥
दुर्वाससो वाक्यमुपेत्य कृष्णा सा चाब्रवीत् काननवासिनीशम्।
अन्तःप्रविष्टं मनसा जुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४८॥

रथमें बिठाकर ले जाते हुए रावणके साथ, रामवियोगिनी सीता हृदयमें अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करती हुई 'हा रघुनाथ! हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव! [हे राम! हे रघुनन्दन! हे राघव! मेरी रक्षा करो]' इस प्रकार रोती हुई जाने लगीं॥ ४४॥ जब रावणके साथ सीताजी समुद्रके मध्यमें पहुँचीं, तब यह कहकर जोर-जोरसे रुदन करने लगीं—'हे विष्णो! हे रघुकुलपते! हे देवताओंको सुख और असुरोंको दुःख देनेवाले! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! [हे राम! हे रघुनन्दन! हे राघव!] प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये।'॥ ४५॥ पानी पीते समय जलके भीतरसे जब ग्राहने गजका पैर पकड़ लिया और उसका समस्त दुःखी बन्धुओंसे साथ छूट गया, तब वह गजराज अधीर होकर अनन्यभावसे निरन्तर 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' ऐसा कहने लगा॥ ४६॥ अपने पुरोहित शंखमुनिके साथ राजा हंसध्वजने अपने पुत्र सुधन्वाको तप्त तैलकी कड़ाहीमें कूदते और 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इन भगवान्‌के परमपावन नामोंका जप करते हुए देखा॥ ४७॥ [एक दिन द्रौपदीके भोजन कर लेनेपर असमयमें दुर्वासा

---

* अत्र 'हे राम रघुनन्दन राघवेति' इति पाठान्तरम्।

ध्येयः सदा योगिभिरप्रमेयश्चिन्ताहरश्चिन्तितपारिजातः।
कस्तूरिकाकल्पितनीलवर्णो गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४९॥
संसारकूपे पतितोऽत्यगाधे मोहान्धपूर्णे विषयाभितप्ते।
करावलम्बं मम देहि विष्णो गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५०॥
त्वामेव याचे मम देहि जिह्वे समागते दण्डधरे कृतान्ते।
वक्तव्यमेवं मधुरं सुभक्त्या गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५१॥
भजस्व मन्त्रं भवबन्धमुक्त्यै जिह्वे रसज्ञे सुलभं मनोज्ञम्।
द्वैपायनाद्यैर्मुनिभिः प्रजप्तं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५२॥
गोपाल वंशीधर रूपसिन्धो लोकेश नारायण दीनबन्धो।
उच्चस्वरैस्त्वं वद सर्वदैव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५३॥

ऋषिने शिष्योंसहित आकर भोजन माँगा तब] वनवासिनी द्रौपदीने भोजन देना स्वीकार कर अपने अन्तःकरणमें स्थित श्रीश्यामसुन्दरको 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' कहकर बुलाया॥ ४८॥ योगी भी जिन्हें ठीक-ठीक नहीं जान पाते, जो सभी प्रकारकी चिन्ताओंको हरनेवाले और मनोवांछित वस्तुओंको देनेके लिये कल्पवृक्षके समान हैं तथा जिनके शरीरका वर्ण कस्तूरीके समान नीला है, उन्हें सदा ही 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन नामोंसे स्मरण करना चाहिये॥ ४९॥ जो मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त और विषयोंकी ज्वालासे सन्तप्त है, ऐसे अथाह संसाररूपी कूपमें मैं पड़ा हुआ हूँ। 'हे मेरे मधुसूदन! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' मुझे अपने हाथका सहारा दीजिये॥ ५०॥ हे जिह्वे! मैं तुझीसे एक भिक्षा माँगता हूँ, तू ही मुझे दे। वह यह कि जब दण्डपाणि यमराज इस शरीरका अन्त करने आवें तो बड़े ही प्रेमसे गद्गद स्वरमें 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इन मंजुल नामोंका उच्चारण करती रहना॥ ५१॥ हे जिह्वे! हे रसज्ञे! संसाररूपी बन्धनको काटनेके लिये तू सर्वदा 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इस नामरूपी मन्त्रका जप किया कर, जो सुलभ एवं सुन्दर है और जिसे व्यास, वसिष्ठादि ऋषियोंने भी जपा है॥ ५२॥ रे जिह्वे! तू

जिह्वे सदैवं भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि।
समस्तभक्तार्तिविनाशनानि गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५४॥
गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण।
गोविन्द गोविन्द रथाङ्गपाणे गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५५॥
सुखावसाने त्विदमेव सारं दुःखावसाने त्विदमेव गेयम्।
देहावसाने त्विदमेव जाप्यं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५६॥
दुर्वारवाक्यं परिगृह्य कृष्णा मृगीव भीता तु कथं कथञ्चित्।
सभां प्रविष्टा मनसाजुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५७॥
श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश गोपाल गोवर्धन नाथ विष्णो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५८॥

निरन्तर 'गोपाल! वंशीधर! रूपसिन्धो! लोकेश! नारायण! दीनबन्धो! गोविद! दामोदर! माधव!' इन नामोंका उच्च स्वरसे कीर्तन किया कर॥ ५३॥ हे जिह्वे! तू सदा ही श्रीकृष्णचन्द्रके 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन मनोहर मंजुल नामोंको, जो भक्तोंके समस्त संकटोंकी निवृत्ति करनेवाले हैं, भजती रह॥ ५४॥ हे जिह्वे! 'गोविन्द! गोविन्द! हरे! मुरारे! गोविन्द! गोविन्द! मुकुन्द! कृष्ण! गोविन्द! गोविन्द! रथांगपाणे! गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन नामोंको तू सदा जपती रह॥ ५५॥ सुखके अन्तमें यही सार है, दुःखके अन्तमें यही गाने योग्य है और शरीरका अन्त होनेके समय भी यही मन्त्र जपने योग्य है, कौन-सा मन्त्र? यही कि 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'॥ ५६॥ दुःशासनके दुर्निवार्य वचनोंको स्वीकार कर मृगीके समान भयभीत हुई द्रौपदी किसी-किसी तरह सभामें प्रवेश कर मन-ही-मन 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इस प्रकार भगवान्‌का स्मरण करने लगी॥ ५७॥ हे जिह्वे! तू 'श्रीकृष्ण! राधारमण! व्रजराज! गोपाल! गोवर्धन! नाथ! विष्णो! गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ५८॥

श्रीनाथ विश्वेश्वर विश्वमूर्ते श्रीदेवकीनन्दन दैत्यशत्रो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५९॥
गोपीपते कंसरिपो मुकुन्द लक्ष्मीपते केशव वासुदेव।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६०॥
गोपीजनाह्लादकर व्रजेश गोचारणारण्यकृतप्रवेश।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६१॥
प्राणेश विश्वम्भर कैटभारे वैकुण्ठ नारायण चक्रपाणे।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६२॥
हरे मुरारे मधुसूदनाद्य श्रीराम सीतावर रावणारे।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६३॥
श्रीयादवेन्द्राद्रिधराम्बुजाक्ष गोगोपगोपीसुखदानदक्ष।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६४॥

हे जिह्वे! तू 'श्रीनाथ! सर्वेश्वर! श्रीविष्णुस्वरूप! श्रीदेवकीनन्दन! असुरनिकन्दन! गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ५९॥ हे जिह्वे! तू 'गोपीपते! कंसरिपो! मुकुन्द! लक्ष्मीपते! केशव! वासुदेव! गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ६०॥ जो व्रजराज व्रजांगनाओंको आनन्दित करनेवाले हैं, जिन्होंने गौओंको चरानेके लिये वनमें प्रवेश किया है; हे जिह्वे! तुम उन्हीं मुरारिके 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ६१॥ हे जिह्वे! तू 'प्राणेश! विश्वम्भर! कैटभारे! वैकुण्ठ! नारायण! चक्रपाणे! गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ६२॥ 'हे हरे! हे मुरारे! हे मधुसूदन! हे पुराणपुरुषोत्तम! हे रावणारे! हे सीतापते श्रीराम! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'—इस नामामृतका हे जिह्वे! तू निरन्तर पान करती रह॥ ६३॥ हे जिह्वे! 'श्रीयदुकुलनाथ! गिरिधर! कमलनयन! गौ, गोप और गोपियोंको सुख देनेमें

धराभरोत्तारणगोपवेष विहारलीलाकृतबन्धुशेष।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६५॥
बकीबकाघासुरधेनुकारे केशीतृणावर्तविघातदक्ष।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६६॥
श्रीजानकीजीवन रामचन्द्र निशाचरारे भरताग्रजेश।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६७॥
नारायणानन्त हरे नृसिंह प्रह्लादबाधाहर हे कृपालो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६८॥
लीलामनुष्याकृतिरामरूप प्रतापदासीकृतसर्वभूप।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६९॥

कुशल श्रीगोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ६४॥ जिन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये सुन्दर ग्वालका रूप धारण किया है और आनन्दमयी लीला करनेके निमित्त ही शेषजीको अपना भाई बनाया है, ऐसे उन नटनागरके 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका हे जिह्वे! तू निरन्तर पान करती रह॥ ६५॥ जो पूतना, बकासुर, अघासुर और धेनुकासुर आदि राक्षसोंके शत्रु हैं और केशी तथा तृणावर्तको पछाड़नेवाले हैं, हे जिह्वे! उन असुरारि मुरारिके 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका तू निरन्तर पान करती रह॥ ६६॥ 'हे जानकीजीवन भगवान् राम! हे दैत्यदलन भरताग्रज! हे ईश! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'—इस नामामृतका हे जिह्वे! तू निरन्तर पान करती रह॥ ६७॥ 'हे प्रह्लादकी बाधा हरनेवाले दयामय नृसिंह! नारायण! अनन्त! हरे! गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका हे जिह्वे! तू निरन्तर पान करती रह॥ ६८॥ हे जिह्वे! जिन्होंने लीलाहीसे मनुष्योंकी-सी आकृति बनाकर रामरूप प्रकट किया है और अपने प्रबल पराक्रमसे सभी भूपोंको दास बना लिया है, तू उन नीलाम्बुज श्यामसुन्दर

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ७०॥
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम्।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ७१॥

इति श्रीबिल्वमङ्गलाचार्यविरचितं श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

५४—श्रीप्रपन्नगीतम्

(पञ्चमस्वरमेकतालं भजनम्, विहागरागेण गीयते)

परमसखे श्रीकृष्ण भयङ्करभवार्णवेऽव्यय विनिमग्नम्।
मामुद्धर ते श्रीकरलालितचरणकमलपरिधौ लग्नम्॥

(ध्रुवपदम्)

श्रीरामके 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका ही निरन्तर पान करती रह॥ ६९॥ हे जिह्वे! तू 'श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे! हे नाथ! नारायण! वासुदेव! तथा गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका ही निरन्तर प्रेमपूर्वक पान करती रह॥ ७०॥ अहो! मनुष्योंकी विषयलोलुपता कैसी आश्चर्यजनक है! कोई-कोई तो बोलनेमें समर्थ होनेपर भी भगवन्नामका उच्चारण नहीं करते; किन्तु हे जिह्वे! मैं तुमसे कहता हूँ, तू 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका ही निरन्तर प्रेमपूर्वक पान करती रह॥ ७१॥

इस प्रकार यह श्रीबिल्वमंगलाचार्यका बनाया हुआ गोविन्द-दामोदर-स्तोत्र समाप्त हुआ।

हे परमसखे! श्रीकृष्ण! हे अच्युत! श्रीलक्ष्मीजीके करकमलोंद्वारा सेवित आपके चरणारविन्दोंकी शरणमें आये हुए एवं भयंकर भवसागरमें डूबते हुए मेरा उद्धार कीजिये। त्रिगुणमयी मायारूपिणी मृगतृष्णासे जिसकी बुद्धि चंचल हो रही है, जिसकी दसों इन्द्रियाँ विषयभोगोंके लिये उत्कण्ठित रहा करती हैं, जो दुष्ट मनुष्योंद्वारा अपमानित हो चुका है, अपनी बुद्धि मारी जानेके कारण जिसने भगवान्‌की शरण छोड़ गुणोंकी शरण ली है; उस सदा भयभीत मनवाले, कामादि छः शत्रुओंके जालमें

गुणमृगतृष्णाचलितधियं विषयार्थसमुत्सुकदशकरणम्।
परिभूतं दुर्मतिनरनिकरैर्मतिभ्रमार्जितगुणशरणम्॥
सततं सभयमनो निवहन्तं षड्रिपुभिर्निखिलेड्यगुरुम्।
कालिन्दीहृदयप्रियविष्णोश्चरणकमलरजसो विधुरम्॥
मनःशोकमतिमोहक्षतयेऽभिकाङ्क्षन्तमजमुखपद्मम्।
मामुद्धर ते श्रीकरलालितचरणकमलपरिधौ लग्नम्॥ १॥
कालिन्दीरुक्मिणीराधिकासत्याजाम्बवतीसुहृदम् ।
निजशरणागतभक्तजनेभ्यः कृपया गतभवभयवरदम्॥
गोपीजनवल्लभरासेश्वरगोवर्धनधरमधुमथनम् ।
वन्देऽहं निखिलाधिपतिं त्वामतिशयसुन्दरगुणभवनम्॥
कृष्णलालजीद्विजाधिपं हे मनोऽनिशं त्वं भज यज्ञम्।
मामुद्धर ते श्रीकरलालितचरणकमलपरिधौ लग्नम्॥ २॥

इति श्रीकृष्णलालद्विजविरचितायां गीताभजनसप्तशत्यां प्रपन्नगीतं सम्पूर्णम्।

फँसकर सबकी खुशामद करनेवाले, कालिन्दीके प्राणनाथ आप (श्रीकृष्ण) के चरणारविन्दपरागसे शून्य, मनके शोक और बुद्धिके भ्रमको नाश करनेके लिये अजन्मा आपके मुखकमलके दर्शनाभिलाषी तथा लक्ष्मीजीके करकमलोंद्वारा सेवित आपके चरणकमलोंकी शरणमें आये हुए मेरा आप उद्धार कीजिये॥ १॥

कालिन्दी, रुक्मिणी, राधा, सत्यभामा और जाम्बवतीके सुहृद्, अपने शरणागत भक्तजनोंपर कृपा करके उन्हें भव-भयसे मुक्त करनेवाला वर देनेवाले, गोपबालाओंके प्रियतम, रासके अधिनायक, गोवर्धनधारी, मधुसूदन, सर्वेश्वर, अत्यन्त कमनीय गुणोंके आश्रय, आपको मैं नमस्कार करता हूँ, हे मन! तू सर्वदा कृष्णलालद्विजके स्वामी यज्ञेश्वर कृष्णका भजन कर; हे परमसखे! लक्ष्मीजीके करकमलोंद्वारा सेवित आपके चरणारविन्दोंकी शरणमें आये हुए मेरा उद्धार कीजिये॥ २॥

५५—श्रीकृष्णः शरणं मम

श्रीकृष्ण एव शरणं मम श्रीकृष्ण एव शरणम्॥

(ध्रुवपदम्)

गुणमय्येषा न यत्र माया न च जनुरपि मरणम्।
यद्यतयः पश्यन्ति समाधौ परममुदाभरणम्॥ १॥

यद्धेतोर्निवहन्ति बुधा ये जगति सदाचरणम्।
सर्वापद्भ्यो विहितं महतां येन समुद्धरणम्॥ २॥

भगवति यत्सन्मतिमुद्वहतां हृदयतमोहरणम्।
हरिपरमा यद्भजन्ति सततं निषेव्य गुरुचरणम्॥ ३॥

असुरकुलक्षतये कृतममरैर्यस्य सदादरणम्।
भुवनतरुं धत्ते यन्निखिलं विविधविषयपर्णम्॥ ४॥

मेरे लिये श्रीकृष्ण ही शरण है, एकमात्र कृष्ण ही शरण है। जहाँ यह त्रिगुणमयी माया और जन्म-मृत्यु नहीं हैं तथा योगीलोग समाधिमें जिस आनन्दमयका यहीं दर्शन करते हैं॥ १॥ जिनकी प्राप्तिके लिये विद्वान् लोग संसारमें अनेक धर्माचरण करते हैं और जिन्होंने सभी आपत्तियोंसे महात्माओंका उद्धार किया है॥ २॥ जो भगवान्‌में सद्बुद्धि रखनेवालोंके हृदयका अज्ञानान्धकार नष्ट कर देते हैं और भगवद्भक्तजन गुरुचरणोंकी सेवा करके जिनका सदा भजन करते हैं॥ ३॥ असुरोंके विनाशके लिये देवताओंने जिनका सदा आदर किया है और जो अनेक विषयरूपी पत्रोंवाले इस संसार-वृक्षको धारण किये हुए हैं॥ ४॥

अवाप्य यद्भूयोऽच्युतभक्ता न यान्ति संसरणम्।
कृष्णलालजीद्विजस्य भूयात्तदघहरस्मरणम्॥ ५॥

इति श्रीकृष्णलालजीद्विजविरचितं 'श्रीकृष्णः शरणं मम' नामक स्तोत्रं समाप्तम्।

५६—गोपिकाविरहगीतम्

एहि मुरारे कुञ्जविहारे एहि प्रणतजनबन्धो
हे माधव मधुमथन वरेण्य केशव करुणासिन्धो।

(ध्रुवपदम्)

रासनिकुञ्जे गुञ्जति नियतं भ्रमरशतं किल कान्त
एहि निभृतपथपान्थ।
त्वामिह याचे दर्शनदानं हे मधुसूदन शान्त॥ १॥
शून्यं कुसुमासनमिह कुञ्जे शून्यः केलिकदम्बः
दीनः केकिकदम्बः।

जिनको प्राप्त करके भगवद्भक्त फिर आवागमनके चक्रमें नहीं फँसते, उन्हींकी पापनाशक स्मृति कृष्णलालजी द्विजके हृदयमें बनी रहे॥ ५॥

हे मुरारे! हे प्रणतजनोंके बन्धु! विहार-कुंजमें आइये, आइये। हे माधव! हे मधुमथन! हे पूजनीय! हे केशव! हे करुणासिन्धो! पधारिये। हे अद्वैतपथके पथिक! हे नाथ! रासनिकुंजमें सैकड़ों भ्रमर गूँज रहे हैं, पधारिये; हे शान्तिमय मधुसूदन! आपके दर्शनदानकी हम याचना करती हैं॥ १॥ हे नाथ! आपके इस क्रीडास्थल कुंजमें बिछा हुआ यह कुसुमासन और

मृदुकलनादं किल सविषादं रोदिति यमुनास्वम्भः॥ २॥
नवनीरजधरश्यामलसुन्दर चन्द्रकुसुमरुचिवेश
गोपीगणहृदयेश।
गोवर्द्धनधर वृन्दावनचर वंशीधर परमेश॥ ३॥
राधारञ्जन कंसनिषूदन प्रणतिस्तावकचरणे
निखिलनिराश्रयशरणे।
एहि जनार्दन पीताम्बरधर कुञ्जे मन्थरपवने॥ ४॥

इति श्रीगोपिकाविरहगीतं सम्पूर्णम्।

यह लीला-कदम्ब, सब आपके बिना सूना मालूम हो रहा है; मयूर आदि पक्षीगण दीन हो रहे हैं, मृदु कलरव करता हुआ श्रीयमुनाजीका निर्मल जल भी आपके वियोगमें शोकके साथ रोता-सा जान पड़ता है॥ २॥ हे नवीन कमल धारण करनेवाले! हे मेघकी-सी श्यामल सुन्दरतावाले! हे मोरपंख और पुष्पोंसे सुशोभित वेषधारी गोपीजनोंके हृदयेश! हे गोवर्धनधारी! वृन्दावन-विहारी! मुरलीधर! हे प्रभो! पधारिये॥ ३॥ हे राधिकाजीको प्रसन्न करनेवाले! कंसको मारनेवाले! सभी निराश्रयोंको आश्रय देनेवाले आपके चरणोंमें हमारा प्रणाम है, हे जनार्दन! पीताम्बरधारी! हे प्रभो! इस मन्द-मन्द वायुवाले कुंजमें पधारिये! पधारिये!! पधारिये!!!॥ ४॥

५७—मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ १॥

वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ २॥

वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ३॥

गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ४॥

करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ५॥

श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है। उनके अधर मधुर हैं, मुख मधुर है, नेत्र मधुर हैं, हास्य मधुर है, हृदय मधुर है और गति भी अति मधुर है॥ १॥ उनके वचन मधुर हैं, चरित्र मधुर हैं, वस्त्र मधुर हैं, अंगभंगी मधुर है, चाल मधुर है और भ्रमण भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ २॥ उनका वेणु मधुर है, चरणरज मधुर है, करकमल मधुर हैं, चरण मधुर हैं, नृत्य मधुर है और सख्य भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ३॥ उनका गान मधुर है, पान मधुर है, भोजन मधुर है, शयन मधुर है, रूप मधुर है और तिलक भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ४॥ उनका कार्य मधुर है, तैरना मधुर है, हरण मधुर है, रमण मधुर है, उद्गार मधुर है और शान्ति भी अति

गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ६॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम्।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ७॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ८॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यकृतं मधुराष्टकं सम्पूर्णम्।

मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ५॥ उनकी गुंजा मधुर है, माला मधुर है, यमुना मधुर है, उसकी तरंगें मधुर हैं, उसका जल मधुर है और कमल भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ६॥ गोपियाँ मधुर हैं, उनकी लीला मधुर है, उनका संयोग मधुर है, वियोग मधुर है, निरीक्षण मधुर है और शिष्टाचार भी मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ७॥ गोप मधुर हैं, गौएँ मधुर हैं, लकुटी मधुर है, रचना मधुर है, दलन मधुर है और उसका फल भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ८॥

५८—श्रीनन्दकुमाराष्टकम्

सुन्दरगोपालम् उरवनमालं नयनविशालं दुःखहरम्।
वृन्दावनचन्द्रमानन्दकन्दं परमानन्दं धरणिधरम्॥
वल्लभघनश्यामं पूर्णकामम् अत्यभिरामं प्रीतिकरम्।
भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम्॥ १॥
सुन्दरवारिजवदनं निर्जितमदनम् आनन्दसदनं मुकुटधरम्।
गुञ्जाकृतिहारं विपिनविहारं परमोदारं चीरहरम्॥
वल्लभपटपीतं कृतउपवीतं करनवनीतं विबुधवरं। भज०॥ २॥
शोभितमुखधूलं यमुनाकूलं निपटअतूलं सुखदतरम्।
मुखमण्डितरेणुं चारितधेनुं वादितवेणुं मधुरसुरम्॥
वल्लभमतिविमलं शुभपदकमलं नखरुचिअमलं तिमिरहरं। भज०॥ ३॥

जिनके हृदयमें वनमाला है, नेत्र बड़े-बड़े हैं, जो शोकहारी, वृन्दावनके चन्द्रमा, परमानन्दमय और पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं, जो सबके प्रिय, मेघके समान श्यामल, पूर्णकाम, अत्यन्त सुन्दर और प्रेम करनेवाले हैं; उन समस्त सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन मनमोहन, गोपाल श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ १॥ जिनका सुन्दर कमलके समान मुख है, जो अपनी कान्तिसे कामदेवको भी जीत चुके हैं, जो आनन्दके आगार, मुकुटधारी, गुंजाकी माला पहननेवाले, वृन्दावनविहारी परम उदार और गोपियोंके चीर हरण करनेवाले हैं, जिनको पीताम्बर प्रिय है, जो सुन्दर यज्ञोपवीत धारण किये हुए और हाथमें माखन लिये हुए हैं, उन समस्त सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, देवेश्वर नन्दनन्दन, श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ २॥ जो यमुनातटपर मुँहमें धूल लपेटे शोभा पा रहे हैं, जिनकी कहीं तुलना नहीं है, जो परम सुखद हैं, जो धूलिधूसरित-मुख हो, धेनु चराते और मधुर स्वरसे वेणु बजाते हैं, जो सबके प्रिय

शिरमुकुटसुदेशं कुञ्चितकेशं नटवरवेशं कामवरम्।
मायाकृतमनुजं हलधरअनुजं प्रतिहतदनुजं भारहरम्॥
वल्लभव्रजपालं सुभगसुचालं हितमनुकालं भाववरं। भज० ॥ ४ ॥
इन्दीवरभासं प्रकटसुरासं कुसुमविकासं वंशिधरम्।
हतमन्मथमानं रूपनिधानं कृतकलगानं चित्तहरम्॥
वल्लभमृदुहासं कुञ्जनिवासं विविधविलासं केलिकरं। भज० ॥ ५ ॥
अतिपरप्रवीणं पालितदीनं भक्ताधीनं कर्मकरम्।
मोहनमतिधीरं फणिबलवीरं हतपरवीरं तरलतरम्॥
वल्लभव्रजरमणं वारिजवदनं हलधरशमनं शैलधरं। भज० ॥ ६ ॥

तथा अत्यन्त विमल हैं, जिनके चरणकमल सुन्दर हैं, नखोंकी कान्ति निर्मल है, जो अज्ञानान्धकारको दूर करते हैं, उन समस्त सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ ३ ॥ जिनके सुन्दर मस्तकपर मुकुट है, बाल घुँघराले हैं, नटवर वेष है, जो कामसे भी अधिक सुन्दर हैं, मायासे मनुष्य-अवतार धारण करते हैं, बलरामजीके छोटे भाई हैं, दानवोंको मारकर पृथ्वीका भार हरण करते हैं; जो व्रजके रक्षक, प्रियतम, सुन्दर गतिशील, प्रतिक्षण हित चाहनेवाले और उत्तम भाववाले हैं; उन सब सुखोंके सारभूत परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ ४ ॥ जिनकी नीलकमलके समान कान्ति है, जिन्होंने पवित्र रास-रसको प्रकट किया है, जो कुसुमोंके समान विकसित रहते हैं, वंशी धारण करते हैं; जिन्होंने कन्दर्पके दर्पको चूर कर दिया है, जो रूपकी राशि हैं, मधुर गायनके द्वारा मन मोह लेते हैं, जिनका मधुर हास प्रिय लगता है, जो निकुंजोंमें रहकर नाना प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैं, उन सब सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ ५ ॥ जो परम प्रवीण हैं, दीनोंके पालक और भक्तोंके अधीन कर्म करनेवाले, जो अत्यन्त धीर मनमोहन, शेषके अवतार बलभद्ररूप, शत्रुवीरोंके

जलधरद्युतिअङ्गं ललितत्रिभङ्गं बहुकृतरङ्गं रसिकवरम्।
गोकुलपरिवारं मदनाकारं कुञ्जविहारं गूढतरम्॥
वल्लभव्रजचन्द्रं सुभगसुछन्दं कृतआनन्दं भ्रान्तिहरं। भज० ॥ ७ ॥
वन्दितयुगचरणं पावनकरणं जगदुद्धरणं विमलधरम्।
कालियशिरगमनं कृतफणिनमनं घातितयमनं मृदुलतरम्॥
वल्लभदुःखहरणं निर्मलचरणम् अशरणशरणं मुक्तिकरं। भज० ॥ ८ ॥

इति श्रीमहाप्रभुवल्लभाचार्यविरचितं श्रीनन्दकुमाराष्टकं सम्पूर्णम्।

नाशक, अतिशय चपल, प्रेममय व्रजमें रमनेवाले, कमल-वदन गोवर्धनधारी और हलधरजीको शान्त करनेवाले हैं; उन सब सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ ६॥ जिनके अंगकी कान्ति मेघके सदृश श्याम है, उसमें ललित त्रिभंग शोभा पाता है, जो नाना रंगोंमें रहते हैं, परम रसिक हैं, गोकुल ही जिनका परिवार है, मदनके समान सुन्दर आकृति है, जो कुंजमें विहार करते हैं, सर्वत्र अत्यन्त गूढ़भावसे छिपे हैं, जो प्यारे व्रजचन्द्र, बड़भागी और दिव्य लीलामय हैं, सदा आनन्द करनेवाले और भ्रान्तिको भगानेवाले हैं, उन सब सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ ७॥ जिनके दोनों चरण (भक्तोंद्वारा) वन्दित हैं, जो सबको पवित्र करते हैं और जगत्का उद्धार करनेवाले हैं, निर्मल भक्तोंको हृदयमें धारण करनेवाले तथा कालियनागके मस्तकपर नृत्य करनेवाले हैं, जिनकी शेषनाग भी स्तुति करते हैं, जो कालयवनके घातक और अति कोमल हैं, जो अपने प्रियजनोंके शोकहारी, निर्मल चरणोंवाले, अशरणोंकी शरण और मोक्ष देनेवाले हैं, उन सब सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णका तत्त्वरूपसे भजन करो॥ ८॥

५९—चतुःश्लोकी

सदा सर्वात्मभावेन भजनीयो व्रजेश्वरः।
करिष्यति स एवास्मदैहिकं पारलौकिकम्॥ १॥
अन्याश्रयो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः।
स्वकीये स्वात्मभावश्च कर्तव्यः सर्वथा सदा॥ २॥
सदा सर्वात्मना कृष्णः सेव्यः कालादिदोषनुत्।
तद्भक्तेषु च निर्दोषभावेन स्थेयमादरात्॥ ३॥
भगवत्येव सततं स्थापनीयं मनः स्वयम्।
कालोऽयं कठिनोऽपि श्रीकृष्णभक्तान्न बाधते॥ ४॥

इति श्रीविट्ठलेश्वरोक्ता (द्वितीया) चतुःश्लोकी समाप्ता।

सबके आत्मारूपसे व्याप्त, भगवान् व्रजराज श्रीकृष्णका ही सदैव भजन करना चाहिये, वे ही हमलोगोंके लौकिक और पारलौकिक लाभ सिद्ध करेंगे॥ १॥ दूसरेका आश्रय नहीं लेना चाहिये, क्योंकि वह सर्वथा बाधक होता है; सदा स्वावलम्बी होकर, सब तरहसे आत्मभावका पालन करना चाहिये॥ २॥ कालादि दोषोंको दूर करनेवाले भगवान् कृष्णका सदा-सर्वथा सेवन करना चाहिये और दोष-दृष्टिको त्यागकर, श्रद्धापूर्वक उनके भक्तोंका संग करना चाहिये॥ ३॥ भगवान् कृष्णमें ही सदैव अपने मनको लगाये रखना चाहिये; क्योंकि उनके भक्तोंको यह कठिन काल भी बाधा नहीं पहुँचा सकता॥ ४॥

ॐ

विविधदेवस्तोत्राणि

६०—श्रीगणपतिस्तोत्रम्

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद्बलिं बध्नता
स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम्।
पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात्स नागाननः॥ १॥

विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड्
विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः।
विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधेर्वाडवो
विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु नः॥ २॥

त्रिपुरासुरको जीतनेके लिये शिवने, बलिको छलसे बाँधते समय विष्णुने, जगत्को रचनेके लिये ब्रह्माने, पृथ्वी धारण करनेके लिये शेषनागने, महिषासुरको मारनेके समय पार्वतीने, सिद्धि पानेके लिये सिद्धोंके अधिपतियों (सनकादि ऋषियों) ने और सब संसारको जीतनेके लिये कामदेवने जिन गणेशजीका ध्यान किया है, वे हमलोगोंका पालन करें॥ १॥ विघ्नरूप अन्धकारका नाश करनेवाले एकमात्र सूर्य, विघ्नरूप वनके जलानेवाले अग्नि, विघ्नरूप सर्पकुलका दर्प नष्ट करनेके लिये गरुड, विघ्नरूप हाथीको मारनेवाले सिंह, विघ्नरूप ऊँचे पहाड़के तोड़नेवाले वज्र, विघ्नरूप

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम्॥ ३॥

गजाननाय महसे प्रत्यूहतिमिरच्छिदे।
अपारकरुणापूरतरङ्गितदृशे नमः॥ ४॥
अगजाननपद्मार्कं गजाननमहर्निशम्।
अनेकदन्तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे॥ ५॥

श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरनरतिलकं रत्नसिंहासनस्थम्।

महासागरके वडवानल, विघ्नरूपी मेघ-समूहको उड़ा देनेवाले प्रचण्ड वायुसदृश गणेशजी हमलोगोंका पालन करें॥ २॥ जो नाटे और मोटे शरीरवाले हैं, जिनका गजराजके समान मुँह और लंबा उदर है, जो सुन्दर हैं तथा बहते हुए मदकी सुगन्धके लोभी भौंरोंके चाटनेसे जिनका गण्डस्थल चपल हो रहा है, दाँतोंकी चोटसे विदीर्ण हुए शत्रुओंके खूनसे जो सिन्दूरकी-सी शोभा धारण करते हैं, कामनाओंके दाता और सिद्धि देनेवाले उन पार्वतीके पुत्र, गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ३॥ विघ्नरूप अन्धकारका नाश करनेवाले, अथाह करुणारूप जलराशिसे तरंगित नेत्रोंवाले, गणेश नामक ज्योतिको नमस्कार है॥ ४॥ जो पार्वतीके मुखरूप कमलको प्रकाशित करनेमें सूर्यरूप हैं, जो भक्तोंको अनेक प्रकारके फल देते हैं, उन एक दाँतवाले गणेशजीकी मैं सदैव उपासना करता हूँ॥ ५॥ जिनका शरीर श्वेत है, कपड़े श्वेत हैं, श्वेत फूल, चन्दन और रत्नदीपोंसे क्षीरसमुद्रके तटपर

दोर्भिः पाशाङ्कुशाब्जाभयवरमनसं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रं
ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम्॥ ६ ॥
आवाहये तं गणराजदेवं रक्तोत्पलाभासमशेषवन्द्यम्।
विघ्नान्तकं विघ्नहरं गणेशं भजामि रौद्रं सहितं च सिद्ध्या॥ ७ ॥
यं ब्रह्म वेदान्तविदो वदन्ति परं प्रधानं पुरुषं तथान्ये।
विश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं वा तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय॥ ८ ॥
विघ्नेश वीर्याणि विचित्रकाणि वन्दीजनैर्मागधकैः स्मृतानि।
श्रुत्वा समुत्तिष्ठ गजानन त्वं ब्राह्मे जगन्मङ्गलकं कुरुष्व॥ ९ ॥
गणेश हेरम्ब गजाननेति महोदर स्वानुभवप्रकाशिन्।
वरिष्ठ सिद्धिप्रिय बुद्धिनाथ वदन्त एवं त्यजत प्रभीतीः॥ १० ॥

जिनकी पूजा हुई है; देवता और मनुष्य जिनको अपना प्रधान पूज्य समझते हैं, जो रत्नके सिंहासनपर बैठे हैं, जिनके हाथोंमें पाश (एक प्रकारकी डोरी), अंकुश और कमलके फूल हैं, जो अभयदान और वरदान देनेवाले हैं, जिनके सिरमें चन्द्रमा रहते हैं और जिनके तीन नेत्र हैं; निर्मल लक्ष्मीके साथ रहनेवाले, उन प्रसन्नप्रभु गणेशजीका अपनी शान्तिके लिये ध्यान करे॥ ६॥ जो देवताओंके गणके राजा हैं, लाल कमलके समान जिनके देहकी आभा है, जो सबके वन्दनीय हैं, विघ्नके काल हैं, विघ्नके हरनेवाले हैं, शिवजीके पुत्र हैं; उन गणेशजीका मैं सिद्धिके साथ आवाहन और भजन करता हूँ॥ ७॥ जिनको वेदान्ती लोग ब्रह्म कहते हैं और दूसरे लोग परम प्रधान पुरुष अथवा संसारकी सृष्टिके कारण या ईश्वर कहते हैं; उन विघ्नविनाशक गणेशजीको नमस्कार है॥ ८॥ हे विघ्नेश! हे गजानन! मागध और वन्दीजनोंके मुखसे गाये जाते हुए अपने विचित्र पराक्रमोंको सुनकर, ब्राह्ममुहूर्तमें उठो और जगत्का कल्याण करो॥ ९॥ 'हे गणेश! हे हेरम्ब! हे गजानन! हे लम्बोदर!

अनेकविघ्नान्तक वक्रतुण्ड स्वसंज्ञवासिंश्च चतुर्भुजेति।
कवीश देवान्तकनाशकारिन् वदन्त एवं त्यजत प्रभीतीः॥ ११॥
अनन्तचिद्रूपमयं गणेशं ह्यभेदभेदादिविहीनमाद्यम्।
हृदि प्रकाशस्य धरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १२॥
विश्वादिभूतं हृदि योगिनां वै प्रत्यक्षरूपेण विभान्तमेकम्।
सदा निरालम्बसमाधिगम्यं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १३॥
यदीयवीर्येण समर्थभूता माया तया संरचितं च विश्वम्।
नागात्मकं ह्यात्मतया प्रतीतं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १४॥
सर्वान्तरे संस्थितमेकगूढं यदाज्ञया सर्वमिदं विभाति।
अनन्तरूपं हृदि बोधकं वै तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १५॥

हे अपने अनुभवसे प्रकाशित होनेवाले! हे श्रेष्ठ! हे सिद्धिके प्रियतम! हे बुद्धिनाथ!' ऐसा कहते हुए हे मनुष्यो! अपना भय छोड़ दो॥ १०॥ 'हे अनेक विघ्नोंका नाश करनेवाले! हे वक्रतुण्ड! गणेश आदि अपने नामवालोंमें भी निवास करनेवाले! हे चतुर्भुज! हे कवियोंके नाथ! हे दैत्योंका नाश करनेवाले!' ऐसा कहते हुए हे मनुष्यो! अपने भयको भगा दो॥ ११॥ जो गणेश अनन्त हैं, चेतनरूप हैं, अभेद और भेद आदिसे रहित और सृष्टिके आदि कारण हैं, अपने हृदयमें जो सदा प्रकाश धारण करते हैं तथा अपनी ही बुद्धिमें स्थित रहते हैं; उन एकदन्त गणेशजीकी शरणमें हम जाते हैं॥ १२॥ जो संसारके आदि कारण हैं, योगियोंके हृदयमें अद्वितीय रूपसे साक्षात् प्रकाशित होते हैं और निरालम्ब समाधिके द्वारा ही जानने योग्य हैं, उन एकदन्त गणेशकी शरणमें हम जाते हैं॥ १३॥ जिनके बलसे माया समर्थ हुई है और उसके द्वारा यह संसार रचा गया है, उन नागस्वरूप तथा आत्मारूपसे प्रतीत होनेवाले एकदन्त गणेशजीकी शरणमें हम जाते हैं॥ १४॥ जो सब लोगोंके अन्तःकरणमें अकेले

यं योगिनो योगबलेन साध्यं कुर्वन्ति तं कः स्तवनेन नौति।
अतः प्रणामेन सुसिद्धिदोऽस्तु तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १६॥
देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।
विघ्नान् हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः॥ १७॥
एकदन्तं महाकायं लम्बोदरगजाननम्।
विघ्ननाशकरं देवं हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥ १८॥
यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर॥ १९॥

इति श्रीगणपतिस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

गूढ़भावसे स्थित रहते हैं, जिनकी आज्ञासे यह जगत् विराजमान है, जो अनन्तरूप हैं और हृदयमें ज्ञान देनेवाले हैं; उन एकदन्त गणेशकी शरणमें हम जाते हैं॥ १५॥ जिनको योगीजन योगबलसे साध्य करते (जान पाते) हैं, स्तुतिसे उनका वर्णन कौन कर सकता है ? इसलिये हम उनको केवल प्रणाम करते हैं कि हमें सिद्धि दें; उन प्रसिद्ध एकदन्तकी शरणमें हम जाते हैं॥ १६॥ जो इन्द्रके मुकुटमें गुँथे हुए मन्दारपुष्पोंके मकरन्दकणोंसे लाल हो रही है, वह गणेशजीके चरण-कमलोंकी रज विघ्नोंका हरण करे॥ १७॥ एक दाँतवाले, बड़े शरीरवाले, स्थूल उदरवाले, हाथीके समान मुखवाले और विघ्नोंका नाश करनेवाले गणेशदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १८॥ हे देव! जो अक्षर, पद अथवा मात्रा छूट गयी हो, उसके लिये क्षमा करो और हे परमेश्वर! प्रसन्न होओ॥ १९॥

६१—सङ्कटनाशनगणेशस्तोत्रम्

नारद उवाच

प्रणम्य शिरसा देवं गौरीपुत्रं विनायकम्।
भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायुःकामार्थसिद्धये॥ १॥

प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम्।
तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम्॥ २॥

लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च।
सप्तमं विघ्नराजं च धूम्रवर्णं तथाष्टमम्॥ ३॥

नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम्।
एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम्॥ ४॥

द्वादशैतानि नामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं प्रभो॥ ५॥

नारदजी बोले—पार्वतीनन्दन देवदेव श्रीगणेशजीको सिर झुकाकर प्रणाम करे और फिर अपनी आयु, कामना और अर्थकी सिद्धिके लिये उन भक्तनिवासका नित्यप्रति स्मरण करे॥ १॥ पहला वक्रतुण्ड (टेढ़े मुखवाले), दूसरा एकदन्त (एक दाँतवाले), तीसरा कृष्णपिंगाक्ष (काली और भूरी आँखोंवाले), चौथा गजवक्त्र (हाथीके-से मुखवाले)॥ २॥ पाँचवाँ लम्बोदर (बड़े पेटवाले), छठा विकट (विकराल), सातवाँ विघ्नराजेन्द्र (विघ्नोंका शासन करनेवाले राजाधिराज) तथा आठवाँ धूम्रवर्ण (धूसर वर्णवाले)॥ ३॥ नवाँ भालचन्द्र (जिसके ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित है), दसवाँ विनायक, ग्यारहवाँ गणपति और बारहवाँ गजानन॥ ४॥ इन बारह नामोंका जो पुरुष (प्रातः,

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्मोक्षार्थी लभते गतिम्॥ ६॥
जपेद्गणपतिस्तोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत्।
संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः॥ ७॥
अष्टभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च लिखित्वा यः समर्पयेत्।
तस्य विद्या भवेत्सर्वा गणेशस्य प्रसादतः॥ ८॥

इति श्रीनारदपुराणे सङ्कटनाशनगणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

६२—सूर्याष्टकम्

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते॥ १॥

मध्याह्न और सायंकाल) तीनों सन्ध्याओंमें पाठ करता है, हे प्रभो! उसे किसी प्रकारके विघ्नका भय नहीं रहता; इस प्रकारका स्मरण सब प्रकारकी सिद्धियाँ देनेवाला है॥ ५॥ इससे विद्याभिलाषी विद्या, धनाभिलाषी धन, पुत्रेच्छु पुत्र तथा मुमुक्षु मोक्षगति प्राप्त कर लेता है॥ ६॥ इस गणपतिस्तोत्रका जप करे तो छः मासमें इच्छित फल प्राप्त हो जाता है तथा एक वर्षमें पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो जाती है—इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है॥ ७॥ जो पुरुष इसे लिखकर आठ ब्राह्मणोंको समर्पण करता है, गणेशजीकी कृपासे उसे सब प्रकारकी विद्या प्राप्त हो जाती है॥ ८॥

हे आदिदेव भास्कर! आपको प्रणाम है, आप मुझपर प्रसन्न हों, हे दिवाकर! आपको नमस्कार है, हे प्रभाकर! आपको प्रणाम है॥ १॥

सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम्।
श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ २॥

लोहितं रथमारूढं सर्वलोकपितामहम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ३॥

त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ४॥

बृंहितं तेजःपुञ्जं च वायुमाकाशमेव च।
प्रभुं च सर्वलोकानां तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ५॥

बन्धूकपुष्पसङ्काशं हारकुण्डलभूषितम्।
एकचक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ६॥

तं सूर्यं जगत्कर्तारं महातेजःप्रदीपनम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ७॥

सात घोड़ोंवाले रथपर आरूढ़, हाथमें श्वेत कमल धारण किये हुए, प्रचण्ड तेजस्वी कश्यपकुमार सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २॥ लोहितवर्ण रथारूढ़ सर्वलोकपितामह महापापहारी सूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३॥ जो त्रिगुणमय ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप हैं, उन महापापहारी महान् वीर सूर्यदेवको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४॥ जो बढ़े हुए तेजके पुंज हैं और वायु तथा आकाशस्वरूप हैं, उन समस्त लोकोंके अधिपति सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ५॥ जो बन्धूक (दुपहरिया)के पुष्पसमान रक्तवर्ण और हार तथा कुण्डलोंसे विभूषित हैं, उन एक चक्रधारी सूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६॥ महान् तेजके प्रकाशक, जगत्के कर्ता, महापापहारी उन सूर्य भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ॥ ७॥

तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञानविज्ञानमोक्षदम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ८॥

इति श्रीशिवप्रोक्तं सूर्याष्टकं सम्पूर्णम्।

६३—श्रीसूर्यमण्डलाष्टकम्

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने॥ १॥
यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालं रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम्।
दारिद्र्यदुःखक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ २॥
यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितं विप्रैः स्तुतं भावनमुक्तिकोविदम्।
तं देवदेवं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ३॥

उन सूर्यदेवको, जो जगत्‌के नायक हैं, ज्ञान, विज्ञान तथा मोक्षको भी देते हैं, साथ ही जो बड़े-बड़े पापोंको भी हर लेते हैं, मैं प्रणाम करता हूँ॥ ८॥

जो जगत्‌के एकमात्र नेत्र (प्रकाशक) हैं; संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारण हैं; उन वेदत्रयीस्वरूप, सत्त्वादि तीनों गुणोंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामक तीन रूप धारण करनेवाले सूर्यभगवान्‌को नमस्कार है॥ १॥ जो प्रकाश करनेवाला, विशाल, रत्नोंके समान प्रभावाला, तीव्र, अनादिरूप और दारिद्र्यदुःखके नाशका कारण है; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ २॥ जिनका मण्डल देवगणोंसे अच्छी प्रकार पूजित है; ब्राह्मणोंसे स्तुत है और भक्तोंको मुक्ति देनेवाला है; उन देवाधिदेव सूर्यभगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ और वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ३॥

यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम्।
समस्ततेजोमयदिव्यरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ४॥
यन्मण्डलं गूढमतिप्रबोधं धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम्।
यत्सर्वपापक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ५॥
यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं यदृग्यजुःसामसु संप्रगीतम्।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ६॥
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः।
यद्योगिनो योगजुषां च संघाः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ७॥
यन्मण्डलं सर्वजनेषु पूजितं ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके।
यत्कालकल्पक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ८॥

जो ज्ञानघन, अगम्य, त्रिलोकीपूज्य, त्रिगुणस्वरूप, पूर्ण तेजोमय और दिव्यरूप है, वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ४॥ जो सूक्ष्म बुद्धिसे जाननेयोग्य है और सम्पूर्ण मनुष्योंके धर्मकी वृद्धि करता है तथा जो सबके पापोंके नाशका कारण है; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ५॥ जो रोगोंका विनाश करनेमें समर्थ है, जो ऋक्, यजु और साम—इन तीनों वेदोंमें सम्यक् प्रकारसे गाया गया है तथा जिसने भूः, भुवः और स्वः—इन तीनों लोकोंको प्रकाशित किया है; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ६॥ वेदज्ञाता लोग जिसका वर्णन करते हैं; चारणों और सिद्धोंका समूह जिसका गान किया करता है तथा योगका सेवन करनेवाले और योगीलोग जिसका गुणगान करते हैं; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ७॥ जो समस्त जनोंमें पूजित है और इस मर्त्यलोकमें प्रकाश करता है तथा जो काल और कल्पके क्षयका कारण भी है; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ८॥

यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्धमुत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम्।
यस्मिञ्जगत्संहरतेऽखिलञ्च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ९ ॥
यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोरात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम्।
सूक्ष्मान्तरैर्योगपथानुगम्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ १० ॥
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः।
यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ११ ॥
यन्मण्डलं वेदविदोपगीतं यद्योगिनां योगपथानुगम्यम्।
तत्सर्ववेदं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ १२ ॥
मण्डलाष्टतयं पुण्यं यः पठेत्सततं नरः।
सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते॥ १३ ॥

इति श्रीमदादित्यहृदये मण्डलाष्टकं सम्पूर्णम्।

जो संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा आदिमें प्रसिद्ध है; जो संसारकी उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय करनेमें समर्थ है; और जिसमें समस्त जगत् लीन हो जाता है, वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ९ ॥ जो सर्वान्तर्यामी विष्णुभगवान्‌का आत्मा तथा विशुद्ध तत्त्ववाला परमधाम है; और जो सूक्ष्म बुद्धिवालोंके द्वारा योगमार्गसे गमन करनेयोग्य है; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ १० ॥ वेदके जाननेवाले जिसका वर्णन करते हैं; चारण और सिद्धगण जिसको गाते हैं; और वेदज्ञलोग जिसका स्मरण करते हैं; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ११ ॥ जिनका मण्डल वेदवेत्ताओंके द्वारा गाया गया है; और जो योगियोंसे योगमार्गद्वारा अनुगमन करनेयोग्य हैं; उन सब वेदोंके स्वरूप सूर्यभगवान्‌को प्रणाम करता हूँ; और वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ १२ ॥ जो पुरुष परम पवित्र इस मण्डलाष्टकस्तोत्रका पाठ सर्वदा करता है; वह पापोंसे मुक्त हो, विशुद्धचित्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठा पाता है॥ १३ ॥

६४—वीरविंशतिकाख्यं श्रीहनुमत्स्तोत्रम्

लाङ्गूलमृष्टवियदम्बुधिमध्यमार्ग-
मुत्प्लुत्य यान्तममरेन्द्रमुदो निदानम्।
आस्फालितस्वकभुजस्फुटिताद्रिकाण्डं
द्राङ्मैथिलीनयननन्दनमद्य वन्दे॥ १॥

मध्येनिशाचरमहाभयदुर्विषह्यं
घोराद्भुतव्रतमियं यददश्चचार।
पत्ये तदस्य बहुधापरिणामदूतं
सीतापुरस्कृततनुं हनुमन्तमीडे॥ २॥

यः पादपङ्कजयुगं रघुनाथपत्न्या
नैराश्यरूषितविरक्तमपि स्वरागैः।
प्रागेव रागि विदधे बहु वन्दमानो
वन्देऽञ्जनाजनुषमेष विशेषतुष्ट्यै॥ ३॥

जो अपनी पूँछसे साफ किये हुए आकाश तथा समुद्रके मध्यवर्ती मार्गपर उछलकर चलते समय इन्द्रके आनन्दका कारण हो रहे थे और आगेकी ओर फैलायी हुई जिनकी भुजाओंसे पर्वतखण्ड फूटते जाते थे, जानकीजीके नेत्रोंको शीघ्र ही आनन्द देनेवाले उन हनुमान्‌जीकी आज मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥ जानकीजीने पतिके लिये जो निशाचरोंके बीच अत्यन्त भयके कारण दुःसह, घोर एवं अद्भुत व्रत किया था, उसीके विविध फल-स्वरूप दूतवेषमें सीताके सम्मुख अपने शरीरको प्रकट किये हुए हनुमान्‌जीकी मैं स्तुति करता हूँ॥ २॥ जिन्होंने श्रीरघुनाथपत्नी जानकीके दोनों

ताञ्जानकीविरहवेदनहेतुभूतान्
द्रागाकलय्य सदशोकवनीयवृक्षान्।
लङ्कालकानिव घनानुदपाटयद्य-
स्तं हेमसुन्दरकपिं प्रणमामि पुष्ट्यै॥ ४॥
घोषप्रतिध्वनितशैलगुहासहस्र-
सम्भ्रान्तनादितवलन्मृगनाथयूथम्।
अक्षक्षयक्षणविलक्षितराक्षसेन्द्र-
मिन्द्रं कपीन्द्रपृतनावलयस्य वन्दे॥ ५॥
हेलाविलङ्घितमहार्णवमप्यमन्दं
घूर्णद्गदाविहतिविक्षतराक्षसेषु।

चरणारविन्दोंको, जो निराशारूप धूलिसे धूसरित होनेके कारण रागशून्य हो गये थे, बारंबार प्रणाम करते हुए, अपने अनुरागोंद्वारा [पतिमिलनके—] पहले ही रागरंजित कर दिया; उन अञ्जनीनन्दन महावीरजीकी मैं विशेष सन्तोषके लिये वन्दना करता हूँ॥ ३॥ सुन्दर अशोकवनके घने वृक्षोंको जानकीजीकी विरहवेदना [को बढ़ाने] का कारण समझकर जिन्होंने लङ्कानगरीकी स्निग्ध अलकावलीके समान उन्हें शीघ्र ही उखाड़ डाला, उन सुवर्णके सदृश सुन्दर शरीरवाले कपिवर हनुमान्‌जीको मैं अपने पालन-पोषणके लिये प्रणाम करता हूँ॥ ४॥ अपने गम्भीर घोषसे प्रतिध्वनित पर्वतोंकी सहस्रों कन्दराओंमें रहनेवाले सिंहोंके समूहको जिन्होंने सम्भ्रमवश शब्दायमान एवं विचलित कर दिया और अक्षकुमारके विनाशकालमें राक्षसराज रावणको भी आश्चर्यमें डाल दिया, उन कपिराज सुग्रीवकी सेनाके नायक हनुमान्‌जीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ५॥ लीलासे ही महासागरको लाँघ जानेपर भी जो तीव्र गतिसे

स्वम्मोदवारिधिमपारमिवेक्षमाणं
वन्देऽहमक्षयकुमारकमारकेशम्॥ ६॥
जम्भारिजित्प्रसभलम्भितपाशबन्धं
ब्रह्मानुरोधमिव तत्क्षणमुद्वहन्तम्।
रौद्रावतारमपि रावणदीर्घदृष्टि-
सङ्कोचकारणमुदारहरिं भजामि॥ ७॥
दर्पोन्नमन्निशिचरेश्वरमूर्धचञ्च-
त्कोटीरचुम्बि निजबिम्बमुदीक्ष्य हृष्टम्।
पश्यन्तमात्मभुजयन्त्रणपिष्यमाण-
तत्कायशोणितनिपातमपेक्षि वक्षः॥ ८॥
अक्षप्रभृत्यमरविक्रमवीरनाश-
क्रोधादिव द्रुतमुदञ्चितचन्द्रहासाम्।
निद्रापिताभ्रघनगर्जनघोरघोषैः
संस्तम्भयन्तमभिनौमि दशास्यमूर्तिम्॥ ९॥

घूमती हुई गदाद्वारा राक्षसोंके क्षत-विक्षत होनेपर अपने आनन्दसमुद्रको अपार-सा देख रहे थे, उन अक्षयकुमारके मारकेशरूप महावीरजीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६॥ जिन्होंने इन्द्रजित् (मेघनाद) के हठात् फेंके हुए पाशबन्धको ब्रह्माजीके अनुरोधकी भाँति तत्काल ग्रहण कर लिया और रुद्रका अवतार होनेपर भी जो रावणकी विशालदृष्टिके संकोचका कारण बन गये, उन उदार वानरवीरको मैं भजता हूँ॥ ७॥ जो अभिमानसे ऊपर उठे हुए रावणके मस्तकोंपर देदीप्यमान किरीटोंमें अपने प्रतिबिम्बको देखकर उसमें अपने भुजयन्त्रद्वारा पीसे जानेवाले रावणके शरीरके रक्तपातकी अपेक्षा रखनेवाली अपनी छातीकी ओर निहारते हुए प्रसन्न हो रहे थे, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ॥ ८॥ देवताओंके समान पराक्रम रखनेवाले अक्षकुमार आदि वीरोंके

आशंस्यमानविजयं रघुनाथधाम
शंसन्तमात्मकृतभूरिपराक्रमेण।
दौत्ये समागमसमन्वयमादिशन्तं
वन्दे हरेः क्षितिभृतः पृतनाप्रधानम्॥ १०॥
यस्यौचितीं समुपदिष्टवतोऽधिपुच्छं
दम्भान्धितां धियमपेक्ष्य विवर्धमानः।
नक्तञ्चराधिपतिरोषहिरण्यरेता
लङ्कां दिधक्षुरपतत्तमहं वृणोमि॥ ११॥
क्रन्दन्निशाचरकुलां ज्वलनावलीढैः
साक्षाद्गृहैरिव बहिः परिदेवमानाम्।
स्तब्धस्वपुच्छतटलग्नकृपीटयोनि-
दन्दह्यमाननगरीं परिगाहमानाम्॥ १२॥

नाशजनित क्रोधसे ही मानो जिसने शीघ्र ही बदला लेनेके लिये चन्द्रहास नामक तलवार उठा ली है, उस दशशीश (रावण)के शरीरका, गम्भीर मेघगर्जनाको भी मूक बनानेवाले अपने भयंकर सिंहनादसे स्तम्भन करते हुए हनुमान्‌जीको प्रणाम करता हूँ॥ ९॥ जो अपने किये हुए प्रचुर पराक्रमोंद्वारा विजयकी आशंसासे युक्त श्रीरामचन्द्रजीके तेजका वर्णन कर रहे हैं और दूतधर्ममें प्राप्त होनेके समन्वयका [अथवा समस्त शास्त्रोंके अन्वयका] उपदेश करते हैं, उन राजा सुग्रीवकी सेनाके प्रधान (सेनापति) वीरकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १०॥ उचित उपदेश दे चुकनेपर, जिनकी पूँछमें निशाचरराज रावणका कोपानल ही उसकी दम्भसे अन्धी हुई बुद्धिके सहारे बढ़कर, लंकाको जलानेकी इच्छासे वहाँ कूद पड़ा था, उन्हीं हनुमान्‌जीका मैं वरण करता हूँ॥ ११॥ उनकी तनी हुई पूँछके

मूर्तैर्गृहासुभिरिव द्युपुरं व्रजद्भि-
र्व्योम्नि क्षणं परिगतं पतगैर्ज्वलद्भिः।
पीताम्बरं दधतमुच्छ्रितदीप्ति पुच्छं
सेनां वहद्विहगराजमिवाहमीडे॥ १३॥

स्तम्भीभवत्स्वगुरुवालधिलग्नवह्नि-
ज्वालोल्ललद्ध्वजपटामिव देवतुष्ट्यै।
वन्दे यथोपरि पुरो दिवि दर्शयन्त-
मद्यैव रामविजयाजिकवैजयन्तीम्॥ १४॥

किनारे अग्नि लगी थी, उससे समस्त लंकानगरी अत्यन्त वेगसे जल रही थी, बाहर निशाचरकुलका करुणक्रन्दन मचा हुआ था, उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो अग्निज्वालासे झुलसे हुए घर ही बाहर निकलकर रो रहे हैं, ऐसी लंकामें चारों ओर दौड़ते हुए हनूमान्‌जीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १२॥ प्रासादशिखरपर रहनेवाले तोता और कबूतर आदि पक्षी जलते हुए जब आकाशमें उड़ते थे तो ऐसा मालूम होता था मानो उन दग्ध होनेवाले गृहोंके प्राण ही मूर्तिमान् होकर स्वर्गमें जा रहे हैं; उन पक्षियोंसे क्षणभर घिरकर ऊपर उठी हुई ज्वालाओंवाली पूँछ धारण किये, जिनकी शोभा पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुको पीठपर चढ़ाकर अपना समूह साथ लिये विचरनेवाले पक्षिराज गरुडकी-सी हो रही थी, उन हनुमान्‌जीकी मैं स्तुति करता हूँ॥ १३॥ लंकानगरके ऊपर अपनी विशाल पूँछ खंभेमें लगी हुई अग्निकी ज्वाला ही जिसमें पताकाके समान है, ऐसी रामचन्द्रजीकी रणविजयवैजयन्तीको देवताओंकी प्रसन्नताके लिये मानो आज ही आकाशमें दिखलाते हुए महावीरजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १४॥

रक्षश्चयैकचितकक्षकपूश्चितौ यः
सीताशुचो निजविलोकनतो मृतायाः।
दाहं व्यधादिव तदन्त्यविधेयभूतं
लाङ्गूलदत्तदहनेन मुदे स नोऽस्तु॥ १५॥
आशुद्धये रघुपतिप्रणयैकसाक्ष्ये
वैदेहराजदुहितुः सरिदीश्वराय।
न्यासं ददानमिव पावकमापतन्त-
मब्धौ प्रभञ्जनतनूजनुषं भजामि॥ १६॥
रक्षस्स्वतृप्तिरुडशान्तिविशेषशोण-
मक्षक्षयक्षणविधानुमितात्मदाक्ष्यम्।
भास्वत्प्रभातरविभानुभरावभासं
लङ्काभयङ्करममुं भगवन्तमीडे॥ १७॥

जिन्होंने सीताजीकी पीड़ाको, जो उनके दर्शनमात्रसे मर चुकी थी, एकमात्र राक्षस-समूहरूप काठ-कबाड़ोंसे बनी हुई लंकारूपिणी चितापर सुलाकर, अपनी पूँछकी लगायी हुई अग्निसे उसका मरणान्त कालोचित दाह-संस्कार किया, वे हनूमान्‌जी हमारी प्रसन्नताके कारण हों॥ १५॥ विदेहनन्दिनी सीताकी शुद्धिके लिये श्रीरामचन्द्रजीके प्रति प्रेमके एकमात्र साक्षीपदपर स्थित पावकको मानो समुद्रके यहाँ धरोहर रखनेके निमित्त, उसमें कूद पड़नेवाले, वायुनन्दनको मैं भजता हूँ॥ १६॥ राक्षसों [के साथ संग्राम] में तृप्त न होनेके कारण, क्रोध एवं अशान्तिसे जो विशेष रक्तवर्ण हो गये हैं, अक्षकुमारके संहारकालके कार्योंसे जिनकी दक्षताका अनुमान किया जा चुका है तथा जो प्रभातसमयके प्रभामय सूर्यके किरणोंके समान कान्तिमान् हैं, लंकाको भय देनेवाले उन

तीर्त्वोदधिं जनकजार्पितमाप्य चूडा-
रत्नं रिपोरपि पुरं परमस्य दग्ध्वा।
श्रीरामहर्षगलदश्रुभिषिच्यमानं
तं ब्रह्मचारिवरवानरमाश्रयेऽहम्॥ १८॥
यः प्राणवायुजनितो गिरिशस्य शान्तः
शिष्योऽपि गौतमगुरुर्मुनिशङ्करात्मा।
हृद्यो हरस्य हरिवद्धरितां गतोऽपि
धीधैर्यशास्त्रविभवेऽतुलमाश्रये तम्॥ १९॥
स्कन्धेऽधिवाह्य जगदुत्तरगीतिरीत्या
यः पार्वतीश्वरमतोषयदाशुतोषम्।
तस्मादवाप च वरानपरानवाप्यान्
तं वानरं परमवैष्णवमीशमीडे॥ २०॥

भगवान् हनूमान्‌की मैं स्तुति करता हूँ॥ १७॥ समुद्र लाँघकर, सीताके दिये हुए चूडारत्नको पाकर और शत्रुके महान् नगरको भी जलाकर, श्रीरामचन्द्रजीके आनन्दाश्रुसे सींचे जानेवाले, ब्रह्मचारिश्रेष्ठ वानरवीरकी मैं शरण लेता हूँ॥ १८॥ जो पूर्वजन्ममें गौतम ऋषिके शंकरात्मा नामक शान्त शिष्य होनेपर भी उनके गुरुके समान श्रद्धापात्र थे; शंकरजीके प्राणवायुसे जिनका प्रादुर्भाव हुआ है, जो हरि (वानर) भावको प्राप्त होकर भी हरि (विष्णु) की भाँति शंकरजीके हार्दिक प्रेमी हैं तथा बुद्धि, धैर्य और शास्त्रके वैभवमें जिनकी कहीं समता नहीं है, उन हनूमान्‌जीकी मैं शरण लेता हूँ॥ १९॥ जिन्होंने आशुतोष उमानाथको कंधेपर चढ़ाकर, अपनी लोकोत्तर गायन-शैलीसे उन्हें प्रसन्न किया और उनसे पानेयोग्य उत्तम वरोंको भी प्राप्त

उमापतेः कविपतेः स्तुतिर्बाल्यविजृम्भिता।
हनूमतस्तुष्टयेऽस्तु वीरविंशतिकाभिधा॥

इति श्रीकविपत्युपनामकोमापतिशर्मद्विवेदिविरचितं
वीरविंशतिकाख्यं श्रीहनुमत्स्तोत्रं सम्पूर्णम्।

६५—गङ्गाष्टकम्

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथि प्रार्थये।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खत-
स्त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः॥ १॥

त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गो वरं
त्वन्नीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः।

कर लिया, मैं उन परम वैष्णव भगवान् वानरवीरकी स्तुति करता हूँ॥ २०॥ कविपति श्रीउमापतिजीकी बालकालमें रचित, यह वीरविंशतिका नामकी स्तुति हनुमान्‌जीकी प्रसन्नताके लिये हो।

पृथ्वीकी शृंगारमाला, पार्वतीजीकी सपत्नी और स्वर्गारोहणके लिये वैजयन्ती पताकारूपिणी हे माता भागीरथि! मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे तटपर निवास करते हुए, तुम्हारा जल पान करते हुए, तुम्हारी तरंगभंगीमें तरंगायमान होते हुए, तुम्हारा नामस्मरण करते हुए और तुम्हींमें दृष्टि लगाये हुए मेरा शरीरपात हो॥ १॥ हे गंगे! तुम्हारे तटवर्ती तरुवरके कोटरमें

नैवान्यत्र मदान्धसिन्धुरघटासङ्घट्टघण्टारण-
त्कारत्रस्तसमस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥ २ ॥

उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वा
वारीणः स्यां जननमरणक्लेशदुःखासहिष्णुः ।
न त्वन्यत्र प्रविरलरणत्कङ्कणक्वाणमिश्रं
वारस्त्रीभिश्चमरमरुता वीजितो भूमिपालः ॥ ३ ॥

काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितं
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचीभिरान्दोलितम् ।
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानः कदा
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः ॥ ४ ॥

पक्षी होकर रहना अच्छा है तथा हे नरकनिवारिणि! तुम्हारे जलमें मत्स्य या कच्छप होकर जन्म लेना भी बहुत अच्छा है, किन्तु दूसरी जगह मदमत्त गजराजोंके जमघटके घण्टारवसे भयभीत हुई शत्रुमहिलाओंसे स्तुत पृथ्वीपति भी होना अच्छा नहीं ॥ २ ॥ हे मातः! मैं भले ही आपके आरपार रहनेवाला जन्म-मरणरूप क्लेशको सहन न करनेवाला कोई बैल, पक्षी, घोड़ा, सर्प अथवा हाथी हो जाऊँ, किन्तु [आपसे दूर] किसी अन्य स्थानपर ऐसा राजा भी न होऊँ, जिसपर वारांगनाएँ मन्द-मन्द झनकारते हुए कंकणोंकी सुमधुर ध्वनिसे युक्त चमर डुला रही हों ॥ ३ ॥ हे परमेश्वरि! हे त्रिपथगे! हे भागीरथि! [मरनेके अनन्तर] देवांगनाओंके करकमलोंमें सुशोभित सुन्दर चमरोंकी हवासे सेवित हुआ मैं अपने मृत शरीरको काकोंसे कुरेदा जाता हुआ, कुत्तोंसे भक्षित होता हुआ, गीदड़ोंसे लुण्ठित होता हुआ, तुम्हारे स्रोतमें पड़कर बहता हुआ, कभी किनारेके स्वल्प जलमें हिलता हुआ और फिर तरंगभंगियोंसे आन्दोलित होता

अभिनवबिसवल्ली पादपद्मस्य विष्णो-
र्मदनमथनमौलेर्मालतीपुष्पमाला।
जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः
क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु॥ ५॥

एतत्तालतमालसालसरलव्यालोलवल्लीलता-
च्छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शङ्खेन्दुकुन्दोज्ज्वलम्।
गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूत्तुङ्गस्तनास्फालितं
स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम्॥ ६॥

गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्।
त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम्॥ ७॥

पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि
शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि।

हुआ कब देखूँगा ?॥ ४॥ जो भगवान् विष्णुके चरणकमलका नूतनमृणाल (कमलनाल) है तथा कामारि त्रिपुरारिके ललाटकी मालती-माला है, वह मोक्षलक्ष्मीकी विलक्षण विजयपताका जयको प्राप्त हो। कलिकलंकको नष्ट करनेवाली, वह जाह्नवी हमें पवित्र करे॥ ५॥ जो ताल, तमाल, साल,सरल तथा चंचल वल्लरी और लताओंसे आच्छादित है, सूर्यकिरणोंके तापसे रहित है, शंख, कुन्द और चन्द्रके समान उज्ज्वल है तथा गन्धर्व, देवता, सिद्ध और किन्नरोंकी कामिनियोंके पीन पयोधरोंसे आस्फालित (टकराया हुआ) है, वह अत्यन्त निर्मल गंगाजल नित्यप्रति मेरे स्नानके लिये हो॥ ६॥ जो श्रीमुरारिके चरणोंसे उत्पन्न हुआ है, श्रीशंकरके सिरपर विराजमान है तथा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाला है, वह मनोहर गंगाजल मुझे पवित्र करे॥ ७॥ जो पापोंको हरण करनेवाला,

झङ्कारकारि हरिपादरजोऽपहारि
गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि॥ ८॥

गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते
वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्यः।
प्रक्षाल्य गात्रकलिकल्मषपङ्कमाशु
मोक्षं लभेत्पतति नैव नरो भवाब्धौ॥ ९॥

इति श्रीमहर्षिवाल्मीकिविरचितं गङ्गाष्टकं सम्पूर्णम्।

६६—श्रीगङ्गाष्टकम्

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि।
सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद॥ १॥

दुष्कर्मोंका शत्रु, तरंगमय, शैल-खण्डोंपर बहनेवाला, पर्वतराज हिमालयकी गुहाओंको विदीर्ण करनेवाला, मधुर कलकल-ध्वनियुक्त और श्रीहरिकी चरणरजको धोनेवाला है, वह निरन्तर शुभकारी गंगाजल मुझे पवित्र करे॥ ८॥ जो पुरुष वाल्मीकिजीके रचे हुए इस कल्याणप्रद गंगाष्टकको प्रातःकाल एकाग्रचित्तसे पढ़ता है, वह अपने शरीरकी कलिकल्मषरूप कीचड़को धोकर, शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है और फिर संसार-समुद्रमें नहीं गिरता॥ ९॥

हे देवि! तुम्हारे तीरपर केवल तुम्हारा जलपान करता हुआ, विषय-

भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः-

कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति।
अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनां
विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति॥ २॥

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु॥ ३॥

मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम्।
सायंप्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकलभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम्॥ ४॥

तृष्णासे रहित हो, मैं श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना करूँ। हे सकल पापविनाशिनि स्वर्ग-सोपानरूपिणि! तरलतरंगिणि! देवि गंगे! मुझपर प्रसन्न हो॥ १॥ हे भगवति! तुम महादेवजीके मस्तककी लीलामयी माला हो, जो प्राणी तुम्हारे जलकणके अणुमात्रको भी स्पर्श करते हैं, वे कलिकलंकके भयको त्यागकर, देवपुरीकी चँवरधारिणी अप्सराओंकी गोदमें शयन करते हैं॥ २॥ ब्रह्माण्डको फोड़कर निकलनेवाली, महादेवजीकी जटा-लताको उल्लसित करती हुई, स्वर्गलोकसे गिरती हुई, सुमेरुकी गुफा और पर्वतमालासे झड़ती हुई, पृथ्वीपर लोटती हुई, पापसमूहकी सेनाको कड़ी फटकार देती हुई, समुद्रको भरती हुई, देवपुरीकी पवित्र नदी गंगा हमें पवित्र करे॥ ३॥ स्नान करते हुए हाथियोंके कुम्भस्थलसे झरते हुए मदरूपी मदिराकी गन्धके कारण मधुपवृन्द जिससे

आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्।
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते॥ ५॥
शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी।
शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी॥ ६॥
कुतो वीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति यदि कायस्तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः॥ ७॥

मतवाले हो रहे हैं, सिद्धोंकी स्त्रियोंके स्तनोंसे बहे हुए कुंकुमके मिलनेसे जो पिंगलवर्ण हो रहा है तथा सायं-प्रातः मुनियोंद्वारा अर्पित कुश और पुष्पोंके समूहसे जो किनारेपर ढका हुआ है, हाथियोंके बच्चोंकी सूँड़ोंसे जिनकी तरंगोंका वेग आक्रान्त हो रहा है, वह गङ्गाजल हमारा कल्याण करे॥ ४॥ जह्नु महर्षिकी कन्या, पापनाशिनी भगवती भागीरथी, पहले ब्रह्माके कमण्डलुमें जलरूपसे, फिर शेषशायी भगवान्‌के पवित्र चरणोदकरूपसे और तदनन्तर महादेवजीकी जटाको सुशोभित करनेवाली मणिरूपसे दीख रही है॥ ५॥ हिमालयसे उतरनेवाली, अपने जलमें गोता लगानेवालोंका उद्धार करनेवाली, समुद्रविहारिणी, संसार-संकटोंका नाश करनेवाली, [विस्तारमें] शेषनागका अनुकरण करनेवाली, शिवजीके मस्तकपर लताके समान सुशोभित, काशीक्षेत्रमें बहनेवाली, मनोहारिणी गंगाजी विजयिनी हो रही हैं॥ ६॥ यदि तुम्हारी तरंग नेत्रोंके सामने आ जाय तो फिर संसारकी तरंग कहाँ रह सकती है? तुम अपना जलपान

गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये
पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणी स्वर्गमार्गे।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे
कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे प्रसीद॥ ८ ॥
मातर्जाह्नवि शम्भुसङ्गवलिते मौलौ निधायाञ्जलिं
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम्।
सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवे
भूयाद्भक्तिरविच्युताहरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती॥ ९ ॥
गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतो नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥ १०॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं श्रीगङ्गाष्टकं सम्पूर्णम्।

करनेपर वैकुण्ठलोकमें निवास देती हो, हे गंगे! यदि जीवोंका शरीर तुम्हारी गोदमें छूट जाता है, तो हे मातः! उस समय इन्द्रपदकी प्राप्ति भी अत्यन्त तुच्छ मालूम होती है॥ ७॥ तीनों लोकोंकी सार, सर्वदेवांगनाएँ जिसमें स्नान करती हैं, ऐसे विस्तृत जलवाली, पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी, स्वर्ग-मार्गमें भगवान्‌के चरणोंकी धूलि धोनेवाली, हे गंगे! जब तुम्हारे जलका एक कणमात्र ही ब्रह्महत्यादि पापोंका प्रायश्चित्त है तो हे त्रैलोक्यपापनाशिनि! तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है? हे देवि गंगे! प्रसन्न हो॥ ८॥ हे शिवकी संगिनी मातः गंगे! शरीर शान्त होनेके समय प्राण-यात्राके उत्सवमें, तुम्हारे तीरपर, सिर नवाकर हाथ जोड़े हुए, आनन्दसे भगवान्‌के चरणयुगलका स्मरण करते हुए मेरी अविचल भावसे हरि-हरमें अभेदात्मिका नित्य भक्ति बनी रहे॥ ९॥ जो पुरुष शुद्ध होकर इस पवित्र गंगाष्टकका पाठ करता है; वह सब पापोंसे मुक्त होकर वैकुण्ठलोकमें जाता है॥ १०॥

६७—श्रीगङ्गास्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले॥ १॥
भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः।
नाहं जाने तव महिमानं पाहि कृपामयि मामज्ञानम्॥ २॥
हरिपदपाद्यतरङ्गिणि गङ्गे हिमविधुमुक्ताधवलतरङ्गे।
दूरीकुरु मम दुष्कृतिभारं कुरु कृपया भवसागरपारम्॥ ३॥
तव जलममलं येन निपीतं परमपदं खलु तेन गृहीतम्।
मातर्गङ्गे त्वयि यो भक्तः किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः॥ ४॥
पतितोद्धारिणि जाह्नवि गङ्गे खण्डितगिरिवरमण्डितभङ्गे।
भीष्मजननि हे मुनिवरकन्ये पतितनिवारिणि त्रिभुवनधन्ये॥ ५॥

हे देवि गंगे! तुम देवगणकी ईश्वरी हो, हे भगवति! तुम त्रिभुवनको तारनेवाली, विमल और तरल तरंगमयी तथा शंकरके मस्तकपर विहार करनेवाली हो। हे मातः! तुम्हारे चरणकमलोंमें मेरी मति लगी रहे॥ १॥ हे भागीरथि! तुम सब प्राणियोंको सुख देती हो, हे मातः! वेद-शास्त्रमें तुम्हारे जलका माहात्म्य वर्णित है, मैं तुम्हारी महिमा कुछ नहीं जानता, हे दयामयि! मुझ अज्ञानीकी रक्षा करो॥ २॥ हे गंगे! तुम श्रीहरिके चरणोंकी चरणोदकमयी नदी हो, हे देवि! तुम्हारी तरंगें हिम, चन्द्रमा और मोतीकी भाँति श्वेत हैं, तुम मेरे पापोंका भार दूर कर दो और कृपा करके मुझे भवसागरके पार उतारो॥ ३॥ हे देवि! जिसने तुम्हारा जल पी लिया, अवश्य ही उसने परमपद पा लिया, हे मातः गंगे! जो तुम्हारी भक्ति करता है उसको यमराज नहीं देख सकता (अर्थात् तुम्हारे भक्तगण यमपुरीमें न जाकर वैकुण्ठमें जाते हैं)॥ ४॥ हे पतितजनोंका उद्धार करनेवाली जह्नुकुमारी गंगे! तुम्हारी तरंगें

कल्पलतामिव फलदां लोके प्रणमति यस्त्वां न पतति शोके।
पारावारविहारिणि गङ्गे विमुखयुवतिकृततरलापाङ्गे॥ ६ ॥
तव चेन्मातः स्रोतःस्नातः पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः।
नरकनिवारिणि जाह्नवि गङ्गे कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे॥ ७ ॥
पुनरसदङ्गे पुण्यतरङ्गे जय जय जाह्नवि करुणापाङ्गे।
इन्द्रमुकुटमणिराजितचरणे सुखदे शुभदे भृत्यशरण्ये॥ ८ ॥
रोगं शोकं तापं पापं हर मे भगवति कुमतिकलापम्।
त्रिभुवनसारे वसुधाहारे त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे॥ ९ ॥
अलकानन्दे परमानन्दे कुरु करुणामयि कातरवन्द्ये।
तव तटनिकटे यस्य निवासः खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः॥ १० ॥

गिरिराज हिमालयको खण्डित करके बहती हुई सुशोभित होती हैं, तुम भीष्मकी जननी और जह्नुमुनिकी कन्या हो, पतितपावनी होनेके कारण तुम त्रिभुवनमें धन्य हो॥ ५॥ हे मातः! तुम इस लोकमें कल्पलताकी भाँति फल प्रदान करनेवाली हो, तुम्हें जो प्रणाम करता है वह कभी शोकमें नहीं पड़ता। हे गंगे! तुम समुद्रके साथ विहार करती हो और तुम्हारा चपल अपांग (नेत्र-कोण) विमुख वनिताकी तरह चंचल है॥ ६॥ हे गंगे! जिसने तुम्हारे प्रवाहमें स्नान कर लिया, वह फिर मातृगर्भमें प्रवेश नहीं करता, हे जाह्नवि! तुम भक्तोंको नरकसे बचाती हो और उनके पापोंका नाश करती हो, तुम्हारा माहात्म्य अतीव उच्च है॥ ७॥ हे करुणाकटाक्षवाली जह्नुपुत्री गंगे! मेरे अपावन अंगोंपर अपनी पावन तरंगोंसे युक्त हो उल्लसित होनेवाली, तुम्हारी जय हो! जय हो!! तुम्हारे चरण इन्द्रके मुकुटमणिसे प्रदीप्त हैं, तुम सबको सुख और शुभ देनेवाली हो और अपने सेवकको आश्रय प्रदान करती हो॥ ८॥ हे भगवति! तुम मेरे रोग, शोक, ताप, पाप और कुमति-कलापको हर लो, तुम त्रिभुवनकी सार और वसुधाका हार हो, हे देवि! इस संसारमें एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो॥ ९॥ हे दुःखियोंकी वन्दनीया देवि गंगे! तुम

वरमिह नीरे कमठो मीनः किं वा तीरे शरटः क्षीणः।
अथवा श्वपचो मलिनो दीनस्तव न हि दूरे नृपतिकुलीनः॥ ११॥
भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये देवि द्रवमयि मुनिवरकन्ये।
गङ्गास्तवमिमममलं नित्यं पठति नरो यः स जयति सत्यम्॥ १२॥
येषां हृदये गङ्गाभक्तिस्तेषां भवति सदा सुखमुक्तिः।
मधुराकान्तापञ्झटिकाभिः परमानन्दकलितललिताभिः॥ १३॥
गङ्गास्तोत्रमिदं भवसारं वाञ्छितफलदं विमलं सारम्।
शङ्करसेवकशङ्कररचितं पठति सुखी स्तव इति च समाप्तः॥ १४॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं गङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

अलकापुरीको आनन्द देनेवाली और परमानन्दमयी हो, तुम मुझपर कृपा करो, हे मातः! जो तुम्हारे तटके निकट वास करता है, वह मानो वैकुण्ठमें ही वास करता है॥ १०॥ हे देवि! तुम्हारे जलमें कच्छप या मीन बनकर रहना अच्छा है, तुम्हारे तीरपर दुबला-पतला गिरगिट (कृकलास) बनकर रहना अच्छा है या अति मलिन, दीन चाण्डालकुलमें जन्म ग्रहण कर रहना अच्छा है; परन्तु (तुमसे) दूर कुलीन नरपति होकर रहना भी अच्छा नहीं॥ ११॥ हे देवि! तुम त्रिभुवनकी ईश्वरी हो, तुम पावन और धन्य हो, जलमयी तथा मुनिवरकी कन्या हो। जो प्रतिदिन इस गंगास्तवका पाठ करता है, वह निश्चय ही संसारमें जयलाभ कर सकता है॥ १२॥ जिनके हृदयमें गंगाके प्रति अचला भक्ति है, वे सदा ही आनन्द और मुक्ति लाभ करते हैं; यह स्तुति परमानन्दमयी सुललित पदावलीसे युक्त, मधुर और कमनीय है॥ १३॥ इस असार संसारमें उक्त गंगास्तव ही निर्मल सारवान् पदार्थ है, यह भक्तोंको अभिलषित फल प्रदान करता है; शंकरके सेवक शंकराचार्यकृत इस स्तोत्रको जो पढ़ता है, वह सुखी होता है—इस प्रकार यह स्तोत्र समाप्त हुआ॥ १४॥

६८—श्रीयमुनाष्टकम्

मुरारिकायकालिमाललामवारिधारिणी
तृणीकृतत्रिविष्टपा त्रिलोकशोकहारिणी।
मनोऽनुकूलकूलकुञ्जपुञ्जधूतदुर्मदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा॥ १॥
मलापहारिवारिपूरभूरिमण्डितामृता
भृशं प्रपातकप्रवञ्चनातिपण्डितानिशम्।
सुनन्दनन्दनाङ्गसङ्गरागरञ्जिता हिता। धुनोतु०॥ २॥
लसत्तरङ्गसङ्गधूतभूतजातपातका
नवीनमाधुरीधुरीणभक्तिजातचातका।
तटान्तवासदासहंससंसृता हि कामदा। धुनोतु०॥ ३॥

जो भगवान् कृष्णचन्द्रके अंगोंकी नीलिमा लिये हुए मनोहर जलौघ धारण करती है, त्रिभुवनका शोक हरनेवाली होनेके कारण स्वर्गलोकको तृणके समान सारहीन समझती है, जिसके मनोरम तटपर निकुंजोंका पुंज वर्तमान है, जो लोगोंका दुर्मद दूर कर देती है; वह कालिन्दी यमुना सदा हमारे आन्तरिक मलको धोवे॥ १॥ जो मलापहारी सलिलसमूहसे अत्यन्त सुशोभित है, मुक्तिदायक है, सदा ही बड़े-बड़े पातकोंको लूट लेनेमें अत्यन्त प्रवीण है, सुन्दर नन्द-नन्दनके अंगस्पर्शजनित रागसे रंजित है, सबकी हितकारिणी है, वह कालिन्दी यमुना सदा ही हमारे मानसिक मलको धोवे॥ २॥ जो अपनी सुहावनी तरंगोंके सम्पर्कसे समस्त प्राणियोंके पापोंको धो डालती है, जिसके तटपर नूतन मधुरिमासे भरे भक्तिरसके अनेक चातक रहा करते हैं, तटके समीप वास करने-वाले भक्तरूपी हंसोंसे जो सेवित रहती है और उनकी कामनाओंको

विहाररासखेदभेदधीरतीरमारुता
गता गिरामगोचरे यदीयनीरचारुता।
प्रवाहसाहचर्यपूतमेदिनीनदीनदा । धुनोतु० ॥ ४ ॥

तरङ्गसङ्गसैकताञ्चितान्तरा सदासिता
शरन्निशाकरांशुमञ्जुमञ्जरीसभाजिता।
भवार्चनाय चारुणाम्बुनाधुना विशारदा। धुनोतु० ॥ ५ ॥

जलान्तकेलिकारिचारुराधिकाङ्गरागिणी
स्वभर्तुरन्यदुर्लभाङ्गसङ्गतांशभागिनी।
स्वदत्तसुप्तसप्तसिन्धुभेदनातिकोविदा । धुनोतु० ॥ ६ ॥

पूर्ण करनेवाली है; वह कलिन्द-कन्या यमुना सदा हमारे मानसिक मलको मिटावे ॥ ३ ॥ जिसके तटपर विहार और रास-विलासके खेदको मिटा देनेवाली मन्द-मन्द वायु चल रही है, जिसके नीरकी सुन्दरताका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता, जो अपने प्रवाहके सहयोगसे पृथ्वी, नदी और नदोंको पावन बनाती है; वह कलिन्दनन्दिनी यमुना सदा हमारे मानसिक मलको दूर करे ॥ ४ ॥ लहरोंसे सम्पर्कित वालुकामय तटसे जिसका मध्यभाग सुशोभित है, जिसका वर्ण सदा ही श्यामल रहता है, जो शरद्ऋतुके चन्द्रमाकी किरणमयी मनोहर मञ्जरीसे अलंकृत होती है और सुन्दर सलिलसे संसारको सन्तोष देनेमें जो कुशल है, वह कलिन्द-कन्या यमुना सदा हमारे मानसिक मलको नष्ट करे ॥ ५ ॥ जो जलके भीतर क्रीडा करनेवाली सुन्दरी राधाके अंगरागसे युक्त है, अपने स्वामी श्रीकृष्णके अंगस्पर्शसुखका जो अन्य किसीके लिये दुर्लभ है, उपभोग करती है, जो अपने प्रवाहसे प्रशान्त सप्त-समुद्रोंमें हलचल पैदा करनेमें अत्यन्त कुशल है; वह कालिन्दी यमुना सदा हमारे आन्तरिक मलको धोवे ॥ ६ ॥

जलच्युताच्युताङ्गरागलम्पटालिशालिनी
विलोलराधिकाकचान्तचम्पकालिमालिनी।
सदावगाहनावतीर्णभर्तृभृत्यनारदा । धुनोतु० ॥ ७ ॥
सदैव नन्दनन्दकेलिशालिकुञ्जमञ्जुला
तटोत्थफुल्लमल्लिकाकदम्बरेणुसूज्ज्वला।
जलावगाहिनां नृणां भवाब्धिसिन्धुपारदा। धुनोतु० ॥ ८ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीयमुनाष्टकं सम्पूर्णम्।

६९—यमुनाष्टकम्

कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं
मुरारिप्रेयस्कां भवभयदवां भक्तवरदाम्।

जलमें धुलकर गिरे हुए श्रीकृष्णके अंगरागसे अपना अंगस्नान करती हुई सखियोंसे जिसकी शोभा बढ़ रही है, जो राधाकी चंचल अलकोंमें गुँथी हुई चम्पक-मालासे मालाधारिणी हो गयी है, स्वामी श्रीकृष्णके भृत्य नारद आदि जिसमें सदा ही स्नान करनेके लिये आया करते हैं; वह कलिन्द-कन्या यमुना हमारे आन्तरिक मलको धो डाले॥ ७॥ जिसके तटवर्ती मंजुल निकुंज सदा ही नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी लीलाओंसे सुशोभित होते हैं; किनारेपर बढ़कर खिली हुई मल्लिका और कदम्बके पुष्प-परागसे जिसका वर्ण उज्ज्वल हो रहा है, जो अपने जलमें डुबकी लगानेवाले मनुष्योंको भवसागरसे पार कर देती है, वह कलिन्द-कन्या यमुना सदा ही हमारे मानसिक मलको दूर बहावे॥ ८॥

जो कृपाकी समुद्र, सूर्यकुमारी, तापको शान्त करनेवाली, श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रेमिका, संसारभीतिके लिये दावानलस्वरूप, भक्तोंको वर देनेवाली और आकाशजालसे मुक्त लक्ष्मीस्वरूपा हैं, उन नित्यफलदायनी यमुनाजीका धीर

वियज्जालान्मुक्तां श्रियमपि सुखाप्तेः प्रतिदिनं
सदा धीरो नूनं भजति यमुनां नित्यफलदाम्॥ १॥
मधुवनचारिणि भास्करवाहिनि जाह्नविसङ्गिनि सिन्धुसुते
मधुरिपुभूषिणि माधवतोषिणि गोकुलभीतिविनाशकृते।
जगदघमोचिनि मानसदायिनि केशवकेलिनिदानगते
जय यमुने जय भीति निवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम्॥ २॥
अयि मधुरे मधुमोदविलासिनि शैलविहारिणि वेगभरे
परिजनपालिनि दुष्टनिषूदिनि वाञ्छितकामविलासधरे।
व्रजपुरवासिजनार्जितपातकहारिणि विश्वजनोद्धरिके। जय०॥ ३॥
अतिविपदम्बुधिमग्नजनं भवतापशताकुलमानसकं
गतिमतिहीनमशेषभयाकुलमागतपादसरोजयुगम्।
ऋणभयभीतिमनिष्कृतिपातककोटिशतायुतपुञ्जतरं। जय०॥ ४॥

पुरुष सुखप्राप्तिके लिये निश्चयपूर्वक निरन्तर प्रतिदिन भजन करता है॥ १॥ हे मधुवनमें विहार करनेवाली! हे भास्करवाहिनि! हे गंगाजीकी सहचरी! हे सिन्धुसुते! हे श्रीमधुसूदनविभूषिणि! हे माधवतृप्तिकारिणि! हे गोकुलका भय दूर करनेवाली! हे जगत्पापविनाशिनि! हे वांछितफलदायिनि! हे कृष्णकेलिकी आश्रयभूता सकल भयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ २॥ अयि मधुरे! अयि मधुगन्धविलासिनि! हे पर्वतोंमें विहार करनेवाली! परम वेगवती अपने तीरवर्ती भक्तजनोंका पालन करनेवाली, दुष्टोंका संहार करनेवाली, इच्छित कामनाओंकी विलासभूमि, व्रजभूमिनिवासियोंके अर्जित पापोंको हरण करनेवाली तथा सम्पूर्ण जीवोंका उद्धार करनेवाली, सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ३॥ जो महान् विपत्तिसागरमें निमग्न है, सैकड़ों सांसारिक संतापोंसे जिसका मन व्याकुल है, जो गति (आश्रय) और मति (विचार)-से शून्य तथा सब प्रकारके भयोंसे व्याकुल है, जो ऋण और भयसे दबा हुआ तथा

नवजलदद्युतिकोटिलसत्तनुहेममयाभररञ्जितके
तडिदवहेलिपदाञ्चलचञ्चलशोभितपीतसुचैलधरे ।
मणिमयभूषणचित्रपटासनरञ्जितगञ्जितभानुकरे। जय० ॥ ५ ॥
शुभपुलिने मधुमत्तयदूद्भवरासमहोत्सवकेलिभरे
उच्चकुलाचलराजितमौक्तिकहारमयाभररोदसिके ।
नवमणिकोटिकभास्करकञ्चुकिशोभिततारकहारयुते। जय० ॥ ६ ॥
करिवरमौक्तिकनासिकभूषणवातचमत्कृतचञ्चलके
मुखकमलामलसौरभचञ्चलमत्तमधुव्रतलोचनिके ।
मणिगणकुण्डललोलपरिस्फुरदाकुलगण्डयुगामलके। जय० ॥ ७ ॥

सैकड़ों-हजारों-करोड़ों प्रतिकारशून्य पापोंका पुतला है, तुम्हारे चरणकमलयुगलमें प्राप्त हुए ऐसे मुझको, हे सकल भयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ४॥ तुम्हारा शरीर करोड़ों नवीन मेघोंकी कान्तिसे सुशोभित तथा सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित है, जिसका चंचल अंचल चपलाकी भी अवहेलना करता है, ऐसे पीत दुकूलको धारण करके तुम परम शोभायमान हो रही हो तथा मणिमय आभूषण और चित्र-विचित्र वस्त्र एवं आसनसे रंजित होकर तुमने सूर्यकी किरणोंको भी कुण्ठित कर दिया है; हे सकल भयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ५॥ हे सुन्दर तटोंवाली! हे मधुमत्त-यदुकुलोत्पन्न श्रीकृष्ण और बलरामके रासमहोत्सवकी क्रीडाभूमि! हे ऊँचे-ऊँचे कुलपर्वतोंकी श्रेणियोंपर शोभायमान मुक्तावलीरूप आभूषणोंसे पृथ्वी और आकाशको विभूषित करनेवाली, हे करोड़ों भास्करोंके समान नवीन मणियोंकी कंचुकीसे सुशोभित तथा तारावलीरूप हारसे युक्त, सकल भयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ६॥ तुम्हारी नासिकाकी भूषणरूप गजमुक्ता वायुसे चंचल होकर झिलमिला रही है, तुम्हारे नेत्ररूप मतवाले भौंरे मानो मुखकमलकी सुवाससे चंचल हो रहे हैं तथा दोनों अमल कपोल हिलते हुए

कलरवनूपुरहेममयाचितपादसरोरुहसारुणिके
धिमिधिमिधिमिधिमितालविनोदितमानसमञ्जुलपादगते।
तव पदपङ्कजमाश्रितमानवचित्तसदाखिलतापहरे। जय० ॥ ८ ॥
भवोत्तापाम्भोधौ निपतितजनो दुर्गतियुतो
यदि स्तौति प्रातः प्रतिदिनमनन्याश्रयतया।
हयाह्रेषैः कामं करकुसुमपुञ्जैरविरतं
सदा भोक्ता भोगान्मरणसमये याति हरिताम्॥ ९ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं यमुनाष्टकं सम्पूर्णम्।

मणिमय कुण्डलोंकी झलकसे झिलमिला रहे हैं, हे सकल भयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ७॥ तुम्हारे अरुण चरणकमल सुवर्णमय नूपुरोंके कलरवसे युक्त हैं, तुम मनको प्रसन्न करनेवाली 'धिमि धिमि' स्वरमयी मनोहर गतिसे गमन करती हो, जो मनुष्य तुम्हारे चरणकमलोंमें चित्त लगाता है, तुम उसके सम्पूर्ण ताप हर लेती हो; हे सकल भयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ८॥ जो मनुष्य संसारके सन्तापसमुद्रमें डूबकर अत्यन्त दुर्गतिग्रस्त हो रहा है, वह यदि प्रतिदिन प्रातःकाल अनन्य चित्तसे (इस स्तोत्रद्वारा श्रीयमुनाजीकी) स्तुति करेगा, वह (यावज्जीवन) घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा हाथोंमें पुष्पपुंजसे सुशोभित होकर, निरन्तर सम्पूर्ण भोगोंको भोगेगा और मरनेके समय भगवद्रूप हो जायगा॥ ९॥

ॐ

प्रकीर्णस्तोत्राणि

७०—प्रातःस्मरणम्

(क) परब्रह्मणः

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसङ्घः॥ १॥
प्रातर्भजामि मनसा वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण।
यन्नेतिनेतिवचनैर्निगमा अवोचं-
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम्॥ २॥

मैं प्रातःकाल, हृदयमें स्फुरित होते हुए आत्मतत्त्वका स्मरण करता हूँ, जो सत्, चित् और आनन्दरूप है, परमहंसोंका प्राप्य स्थान है और जाग्रदादि तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण है, जो स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत् अवस्थाको नित्य जानता है, वह स्फुरणारहित ब्रह्म ही मैं हूँ, पंचभूतोंका संघात (शरीर) मैं नहीं हूँ॥ १॥ जो मन और वाणीसे अगम्य है, जिसकी कृपासे समस्त वाणी भास रही हैं, जिसका शास्त्र 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं, जिस अजन्मा देवदेवेश्वर

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै॥ ३॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम्।
प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम्॥ ४॥

इति श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ परब्रह्मणः प्रातःस्मरणस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(ख) श्रीविष्णोः

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम्।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम्॥ १॥
प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना
पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः।

अच्युतको अग्रय (आदि) पुरुष कहते हैं, मैं उसका प्रातःकाल भजन करता हूँ॥ २॥ जिस सर्वस्वरूप परमेश्वरमें यह समस्त संसार रज्जुमें सर्पके समान प्रतिभासित हो रहा है, उस अज्ञानातीत, दिव्यतेजोमय, पूर्ण सनातन पुरुषोत्तमको मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ ३॥ ये तीनों श्लोक तीनों लोकोंके भूषण हैं, इन्हें जो कोई प्रातःकालके समय पढ़ता है, उसे परमपदकी प्राप्ति होती है॥ ४॥

गरुडवाहन, कमलनाभ, ग्राहसे ग्रसित गजेन्द्रकी मुक्तिके कारण, सुदर्शनचक्रधारी नवविकसित कमलपत्र-से नेत्रवाले नारायणका भव-भयरूपी महान् दुःखकी शान्तिके लिये, मैं प्रातः स्मरण करता हूँ॥ १॥ वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले विप्रोंके परम आश्रय, नरकरूप संसारसमुद्रसे तारनेवाले,

नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य
पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि भजतामभयङ्करं तं
प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै ।
यो ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिगजेन्द्रघोर-
शोकप्रणाशनकरो धृतशङ्खचक्रः ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीविष्णोः प्रातःस्मरणम् ॥

(ग) श्रीरामस्य

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं
मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम् ।
कर्णावलम्बिचलकुण्डलशोभिगण्डं
कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम् ॥ १ ॥

उस परमपुरुषके चरणारविन्दयुगलमें सिर झुकाकर मैं मन-वचनसे प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ २ ॥ जिसने शंख-चक्र धारण करके ग्राहके मुखमें पड़े हुए चरणवाले गजेन्द्रके घोर संकटका नाश किया, भक्तको अभय करनेवाले उन भगवान्‌को मैं अपने पूर्वजन्मोंके सब पापोंका नाश करनेके लिये प्रातःकाल भजता हूँ॥ ३ ॥

जो मधुर मुसकानयुक्त, मधुरभाषी और विशाल भालसे सुशोभित हैं; कानोंमें लटके हुए चंचल कुण्डलोंसे जिनके दोनों कपोल शोभित हो रहे हैं तथा जो कर्णपर्यन्त विस्तृत बड़े-बड़े नेत्रोंसे शोभायमान और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले हैं, श्रीरघुनाथजीके ऐसे मुखारविन्दका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ॥ १ ॥

प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं
रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः।
यद्राजसंसदि विभज्य महेशचापं
सीताकरग्रहणमङ्गलमाप सद्यः॥ २॥

प्रातर्नमामि रघुनाथपदारविन्दं
वज्राङ्कुशादिशुभरेखि सुखावहं मे।
योगीन्द्रमानसमधुव्रतसेव्यमानं
शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः॥ ३॥

प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम
वाग्दोषहारि सकलं शमलं निहन्ति।
यत्पार्वती स्वपतिना सह भोक्तुकामा
प्रीत्या सहस्त्रहरिनामसमं जजाप॥ ४॥

मैं प्रातःकाल श्रीरघुनाथजीके करकमलोंका स्मरण करता हूँ, जो राक्षसोंको भय देनेवाले और भक्तोंके वरदायक हैं तथा जिन्होंने राजसभामें शंकरका धनुष तोड़कर शीघ्र ही सीताका मंगलमय पाणिग्रहण किया था॥ २॥ मैं प्रातःकाल श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंको नमस्कार करता हूँ, जो वज्र, अंकुश आदि शुभ रेखाओंसे युक्त, मेरे लिये सुखदायी, योगियोंके मन-मधुपद्वारा सेवित और गौतमपत्नी अहल्याके शापको दूर करनेवाले हैं॥ २॥ मैं प्रातःकाल अपनी वाणीसे श्रीरघुनाथजीके नामका जप करता हूँ, जो वाणीके दोषोंको नाश करनेवाला और सर्व पापोंको हरनेवाला है तथा जिसे पार्वतीजीने अपने पति (शंकर)के साथ भोजन करनेकी इच्छासे भगवान्‌के सहस्त्रनामके सदृश प्रीतिसहित जपा था॥ ४॥

प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिं
नीलाम्बुजोत्पलसितेतररत्ननीलाम् ।
आमुक्तमौक्तिकविशेषविभूषणाढ्यां
ध्येयां समस्तमुनिभिर्जनमुक्तिहेतुम् ॥ ५ ॥

यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रयतः पठेद्धि
नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः ।
श्रीरामकिङ्करजनेषु स एव मुख्यो
भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम् ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीरामस्य प्रातःस्मरणम् ॥

(घ) श्रीशिवस्य

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ १ ॥

मैं प्रातःकाल श्रीरघुनाथजीकी वेदवन्दित मूर्तिका आश्रय लेता हूँ, जो नीलकमल और नीलमणिके समान नीलवर्ण, लटकते हुए मोतियोंकी मालासे विभूषित, समस्त मुनियोंकी ध्येय तथा भक्तोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली है॥ ५॥ जो पुरुष प्रातःकाल नींदसे जगकर जितेन्द्रियभावसे इन पाँचों श्लोकोंका नित्य पाठ करता है, वह श्रीरामजीके सेवकोंमें मुख्य होकर श्रीहरिके लोकको, जो दूसरोंके लिये दुर्लभ है, प्राप्त होता है॥ ६॥

जो सांसारिक भयको हरनेवाले और देवताओंके स्वामी हैं, जो गंगाजीको धारण करते हैं, जिनका वृषभ वाहन है, जो अम्बिकाके ईश हैं तथा जिनके

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरजार्द्धदेहं
सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम्।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥ २॥
प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम्।
नामादिभेदरहितं षड्भावशून्यं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥ ३॥
प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य
श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति।
ते दुःखजातं बहुजन्मसञ्चितं
हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः॥ ४॥

॥ इति श्रीशिवस्य प्रातःस्मरणम्॥

हाथमें खट्वाङ्ग, त्रिशूल और वरद तथा अभयमुद्रा है, उन संसाररोगको हरनेके निमित्त अद्वितीय औषधरूप 'ईश' (महादेवजी) को मैं प्रातःसमयमें स्मरण करता हूँ॥ १॥ भगवती पार्वती जिनका आधा अंग हैं, जो संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, आदिदेव हैं, विश्वनाथ हैं, विश्व-विजयी और मनोहर हैं, सांसारिक रोगको नष्ट करनेके लिये अद्वितीय औषधरूप उन गिरीश (शिव)-को मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ २॥ जो अन्तसे रहित आदिदेव हैं, वेदान्तसे जाननेयोग्य, पापरहित एवं महान् पुरुष हैं तथा जो नाम आदि भेदोंसे रहित, छः भाव-विकारों (जन्म, वृद्धि, स्थिरता, परिणमन, अपक्षय और विनाश)-से शून्य, संसाररोगको हरनेके निमित्त अद्वितीय औषध हैं, उन एक शिवजीको मैं प्रातःकाल भजता हूँ॥ ३॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर शिवका ध्यान कर प्रतिदिन इन तीनों श्लोकोंका पाठ करते हैं, वे

(ङ) श्रीदेव्याः

चाञ्चल्यारुणलोचनाञ्चितकृपां चन्द्रार्कचूडामणिं
चारुस्मेरमुखां चराचरजगत्संरक्षणीं सत्पदाम्।
चञ्चच्चम्पकनासिकाग्रविलसन्मुक्तामणीरञ्जितां
श्रीशैलस्थलवासिनीं भगवतीं श्रीमातरं भावये॥ १॥

कस्तूरीतिलकाञ्चितेन्दुविलसत्प्रोद्भासिभालस्थलीं
कर्पूरद्रवमिश्रचूर्णखदिरामोदोल्लसद्वीटिकाम्।
लोलापाङ्गतरङ्गितैरधिकृपासारैर्नतानन्दिनीं
श्रीशैलस्थलवासिनीं भगवतीं श्रीमातरं भावये॥ २॥

॥ इति श्रीदेव्याः प्रातःस्मरणम्॥

लोग अनेक जन्मोंके संचित दुःखसमूहसे मुक्त होकर शिवजीके उसी कल्याणमय पदको पाते हैं॥ ४॥

जिनके चंचल और अरुण नेत्रोंसे करुणा प्रकट हो रही है, चन्द्रमा और सूर्य जिनके मस्तकके आभूषण हैं, जिनका मुख सुन्दर मुसकानसे सुशोभित है, जो चराचर जगत्की रक्षिका हैं, सत्पुरुष जिनके विश्रामस्थान हैं, शोभायमान चम्पाके समान सुन्दर नासिकाके अग्रभागमें मोतीकी बुलाक जिनकी शोभा बढ़ा रही है, उन श्रीशैलपर निवास करनेवाली भगवती श्रीमाताका मैं स्मरण करता हूँ॥ १॥ जिनका ललाट कस्तूरीकी बेंदीसे विभूषित और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान है, जिनके मुखमें कपूरके रससे युक्त चूना और खैरकी सुगन्धसे पूर्ण पानका बीड़ा शोभा दे रहा है, जो अपने चंचल कटाक्षोंसे तरंगायमान करुणाकी धारावाहिनी वृष्टिसे प्रणत भक्तोंको आनन्द देनेवाली हैं, श्रीशैलपर निवास करनेवाली उन भगवती श्रीमाताका मैं स्मरण करता हूँ॥ २॥

(च) श्रीगणेशस्य

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं
सिन्दूरपूरपरिशोभितगण्डयुग्मम्।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड-
माखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम् ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि चतुराननवन्द्यमान-
मिच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम्।
तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं
पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय॥ २ ॥

प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोक-
दावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम्।
अज्ञानकाननविनाशनहव्यवाह-
मुत्साहवर्धनमहं सुतमीश्वरस्य॥ ३ ॥

जो इन्द्र आदि देवेश्वरोंके समूहसे वन्दनीय हैं, अनाथोंके बन्धु हैं, जनके युगल कपोल सिन्दूरराशिसे अनुरंजित हैं, जो उद्दण्ड (प्रबल) विघ्नोंका ण्डन करनेके लिये प्रचण्ड दण्डस्वरूप हैं; उन श्रीगणेशजीको मैं प्रातःकाल मरण करता हूँ॥ १॥ जो ब्रह्मासे वन्दनीय हैं, अपने सेवकको उसकी च्छाके अनुकूल पूर्ण वरदान देनेवाले हैं, तुन्दिल हैं, सर्प ही जिनका यज्ञोपवीत , उन क्रीडाकुशल शिव-पार्वतीके पुत्र (श्रीगणेशजी) को मैं कल्याण-ाप्तिके लिये प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ २॥ जो अपने जनको भय प्रदान करनेवाले हैं, भक्तोंके शोकरूप वनके लिये दावानल (वनाग्नि) , गणोंके नायक हैं, जिनका मुख हाथीके समान और सुन्दर है और जो

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम्।
प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत्प्रयतः पुमान्॥ ४॥

॥ इति श्रीगणेशप्रातःस्मरणम्॥

(छ) श्रीसूर्यस्य

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम्॥ १॥

प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभि-
र्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नुतमर्चितं च।
वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतं
त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च॥ २॥

अज्ञानरूप वनको नष्ट करने (जलाने) के लिये अग्नि हैं; उन उत्साह बढ़ानेवाले शिवसुत (श्रीगणेशजी)को मैं प्रातःकाल भजता हूँ॥ ३॥ जो पुरुष प्रातःसमय उठकर संयतचित्तसे इन तीनों पवित्र श्लोकोंका नित्य पाठ करता है, उसको यह स्तोत्र सर्वदा साम्राज्यके समान सुख देता है॥ ४॥

मैं सूर्यभगवान्‌के उस श्रेष्ठरूपको प्रातःसमय स्मरण करता हूँ; जिसका मण्डल ऋग्वेद है, तनु यजुर्वेद है और किरणें सामवेद हैं और जो ब्रह्माका दिन है, जगत्‌की उत्पत्ति, रक्षा और नाशका कारण है तथा लक्ष्य और अचिन्त्यस्वरूप है॥ १॥ मैं प्रातःसमय शरीर, वाणी और मनके द्वारा ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंसे स्तुत और पूजित, वृष्टिके कारण एवं अवृष्टिके हेतु, तीनों लोकोंके पालनमें तत्पर और सत्त्व आदि त्रिगुणरूप धारण करनेवाले तरणि

प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं
पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च।
तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिं
गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं भानोः प्रातःकाले पठेत्तु यः।
स सर्वव्याधिनिर्मुक्तः परं सुखमवाप्नुयात्॥ ४ ॥

॥ इति श्रीसूर्यप्रातःस्मरणम् ॥

(ज) श्रीभगवद्भक्तानाम्

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्
पुण्यानिमान् परमभागवतान् स्मरामि॥ १ ॥

(पाण्डवगीतायाः)

(सूर्यभगवान्)को नमस्कार करता हूँ॥ २॥ जो पापोंके समूह तथा शत्रुजनित भय एवं रोगोंका नाश करनेवाले हैं, सबसे उत्कृष्ट हैं, सम्पूर्ण लोकोंके समयकी गणनाके निमित्तभूत कालस्वरूप हैं और गौओंके कण्ठबन्धन छुड़ानेवाले हैं, उन अनन्तशक्तिसम्पन्न आदिदेव सविता (सूर्यभगवान्) को मैं प्रातःकाल भजता हूँ॥ ३॥ जो मनुष्य प्रातःकाल सूर्यके स्मरणरूप इन तीनों श्लोकोंका पाठ करता है; वह सब रोगोंसे मुक्त होकर परम सुख प्राप्त कर सकता है॥ ४॥

प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीष, शुक, शौनक, भीष्म, दाल्भ्य, रुक्मांगद, अर्जुन, वसिष्ठ और विभीषण आदि इन परम पवित्र

वाल्मीकिः सनकः सनन्दनतरुर्व्यासो वसिष्ठो भृगु-
र्जाबालिर्जमदग्निकच्छजनको गर्गोऽङ्गिरा गौतमः।
मान्धाता ऋतुपर्णवैन्यसगरा धन्यो दिलीपो नलः
पुण्यो धर्मसुतो ययातिनहुषौ कुर्वन्तु नो मङ्गलम्॥ २॥

(मङ्गलाष्टकात्)

॥ इति प्रातःस्मरणम् ॥

७१—श्रीशिवरामाष्टकस्तोत्रम्

शिव हरे शिव राम सखे प्रभो त्रिविधतापनिवारण हे विभो।
अज जनेश्वर यादव पाहि मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ १॥
कमललोचन राम दयानिधे हर गुरो गजरक्षक गोपते।
शिवतनो भव शङ्कर पाहि मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ २॥

वैष्णवोंका मैं (प्रातःकाल) स्मरण करता हूँ॥ १॥ वाल्मीकि, सनक, सनन्दन, तरु, व्यास, वसिष्ठ, भृगु, जाबालि, जमदग्नि, कच्छ, जनक, गर्ग, अंगिरा, गौतम, मान्धाता, ऋतुपर्ण, पृथु, सगर, धन्यवाद देनेयोग्य दिलीप और नल, पुण्यात्मा युधिष्ठिर, ययाति और नहुष—ये सब हमारा मंगल करें॥ २॥

हे शिव! हे हरे, हे शिव, हे राम, हे सखे! हे प्रभो, हे त्रिविध तापनिवारण विभो! हे अज, हे जगन्नाथ, हे यादव! मेरी रक्षा करो; हे शिव! हे हरे! मेरी कल्याणमय विजय करो॥ १॥ हे कमललोचन दयानिधे राम! हे हर! हे गुरो! हे गजरक्षक! हे गोपते! हे कल्याण-रूपधारी भव! हे शंकर! मेरी रक्षा करो; हे शिव! हे हरे! मेरा उत्तम विजय-साधन करो॥ २॥

सुजनरञ्जन मङ्गलमन्दिरं भजति ते पुरुषः परमं पदम्।
भवति तस्य सुखं परमद्भुतं शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ३॥
जय युधिष्ठिरवल्लभ भूपते जय जयार्जितपुण्यपयोनिधे।
जय कृपामय कृष्ण नमोऽस्तु ते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ४॥
भवविमोचन माधव मापते सुकविमानसहंस शिवारते।
जनकजारत राघव रक्ष मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ५॥
अवनिमण्डलमङ्गल मापते जलदसुन्दर राम रमापते।
निगमकीर्तिगुणार्णव गोपते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ६॥
पतितपावन नाममयी लता तव यशो विमलं परिगीयते।
तदपि माधव मां किमुपेक्षसे शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ७॥

हे सज्जन-मनरंजन! जो पुरुष तुम्हारे मंगलमन्दिर (शिव और विष्णुरूप) परमपदका आश्रय लेते हैं, उन्हें परम दिव्य सुख प्राप्त होता है; अतएव हे शिव! हे हरे! मेरा वर विजय-साधन करो॥ ३॥ हे युधिष्ठिरके प्रियतम! हे भूपते! आप विजयी हों। हे पुण्यमहासागरके उपार्जन करनेवाले! आपकी जय हो, जय हो; हे दयामय कृष्ण! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है; हे शिव! हे हरे! आप मेरी कल्याणमय विजय करें॥ ४॥ हे भवभयहारी माधव! हे लक्ष्मीपते! हे सुकवि-मानस-हंस! हे पार्वतीप्रिय! हे जानकीजीवन राघव! मेरी रक्षा करो, हे शिव! हे हरे! मेरा वर विजयसम्पादन करो॥ ५॥ हे भूमिमण्डलके मंगलस्वरूप! हे श्रीपते! हे घनश्याम सुन्दर! हे राम! हे रमापते! हे वेदवर्णित गुण-सागर! हे गोपते! हे शिव! हे हरे! मेरी कल्याणमय विजय करो॥ ६॥ हे पतितपावन! तुम्हारा नाम कल्पलता है, तुम्हारा यश नित्य सर्वत्र गाया जाता है तथापि हे माधव! तुम मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हो ? हे शिव! हे हरे! मेरा शुभ विजय-साधन करो॥ ७॥

अमरतापरदेव रमापते विजयतस्तव नामधनोपमा।
मयि कथं करुणार्णव जायते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ८ ॥
हनुमतः प्रिय चापकर प्रभो सुरसरिद्धृतशेखर हे गुरो।
मम विभो किमु विस्मरणं कृतं शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ९ ॥
अहरहर्जनरञ्जनसुन्दरं पठति यः शिवरामकृतं स्तवम्।
विशति रामरमाचरणाम्बुजे शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ १०॥
प्रातरुत्थाय यो भक्त्या पठेदेकाग्रमानसः।
विजयो जायते तस्य विष्णुमाराध्यमाप्नुयात्॥ ११॥

इति श्रीरामानन्दस्वामिना विरचितं श्रीशिवरामाष्टकं सम्पूर्णम्।

हे देवोंमें श्रेष्ठ देव! हे दयासागर रमापते! सर्वत्र विजय पानेवाले तुझ परमेश्वरके नामरूपी धनका आदर्श कोष मेरे पास किस प्रकार संचित हो जायगा? हे शिव! हे हरे! मेरा परम विजय-साधन करो॥ ८॥ हे हनुमत्प्रिय! हे चापधारी प्रभो! हे शीशपर गंगाजीको धारण करनेवाले गुरुदेव! हे विभो! तुम क्यों मुझे भूल गये ? हे शिव! हे हरे! मेरा परम जय-साधन करो॥ ९॥ जो मनुष्य इस लोकप्रिय सुन्दर रामानन्द स्वामीके विरचित शिवराम-स्तवका पाठ करता है, वह राम-रमाके चरणकमलोंमें प्रवेश करनेमें समर्थ होता है। हे शिव! हे शिव! हे हरे! मेरा श्रेष्ठ विजय-साधन करो॥ १०॥ जो प्रातःकाल उठकर एकाग्रचित्तसे इस शिवरामस्तोत्रका पाठ करता है, उसकी सर्वत्र जय होती है और वह अपने आराध्यदेव विष्णुको प्राप्त होता है॥ ११॥

७२—कैवल्याष्टकम्

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम्।
पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम्॥ १॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मायामयं जगत्।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं हरेर्नामैव केवलम्॥ २॥
स गुरुः स पिता चापि सा माता बान्धवोऽपि सः।
शिक्षयेच्चेत्सदा स्मर्तुं हरेर्नामैव केवलम्॥ ३॥
निःश्वासे न हि विश्वासः कदा रुद्धो भविष्यति।
कीर्तनीयमतो बाल्याद्धरेर्नामैव केवलम्॥ ४॥
हरिः सदा वसेत्तत्र यत्र भागवता जनाः।
गायन्ति भक्तिभावेन हरेर्नामैव केवलम्॥ ५॥
अहो दुःखं महादुःखं दुःखाद् दुःखतरं यतः।
काचार्थं विस्मृतं रत्नं हरेर्नामैव केवलम्॥ ६॥

केवल हरिका नाम ही मधुरसे भी मधुर, मंगलमयसे भी मंगलमय और पवित्रसे भी पवित्र है॥ १॥ ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सारा संसार मायामय है, केवल एक हरिका नाम ही सत्य है; नाम ही सत्य है, फिर भी [कहता हूँ कि] नाम ही सत्य है॥ २॥ जो सर्वदा केवल हरिनाम स्मरण करना ही सिखलाता है, वही गुरु है, वही पिता है, वही माता है और बन्धु भी वही है॥ ३॥ श्वासका कुछ विश्वास नहीं, न मालूम कब रुक जायगा, इसलिये बाल्यावस्थासे ही केवल हरिनामका ही कीर्तन करना चाहिये॥ ४॥ जहाँ भक्तजन भक्तिभावसे केवल हरिनामका ही गान करते हैं, वहाँ सर्वदा भगवान् विराजते हैं॥ ५॥ अहो! महान् दुःख है! भयंकर कष्ट है!! सबसे बढ़कर शोक है!!! जो विषयरूपी काचके लिये हरिनामरूपी रत्नको बिसार दिया॥ ६॥

दीयतां दीयतां कर्णो नीयतां नीयतां वचः।
गीयतां गीयतां नित्यं हरेर्नामैव केवलम्॥ ७॥
तृणीकृत्य जगत्सर्वं राजते सकलोपरि।
चिदानन्दमयं शुद्धं हरेर्नामैव केवलम्॥ ८॥

इति श्रीकैवल्याष्टकं सम्पूर्णम्।

७३—साधनपञ्चकम्

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम्।
पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयता-
मात्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम्॥ १॥
सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढा धीयतां
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु सन्त्यज्यताम्।

केवल एक हरिनामके ही श्रवणमें कान लगाओ, वाणीसे बोलो और उसीका निरन्तर गान करो॥ ७॥ सम्पूर्ण जगत्को तृणतुल्य करके, सबके ऊपर केवल एक हरिका शुद्ध सच्चिदानन्दघन नाम ही विराजता है॥ ८॥

सर्वदा वेदाध्ययन करो, इसके बताये हुए कर्मोंका भलीभाँति अनुष्ठान करो, उनके द्वारा भगवान्‌की पूजा करो और काम्यकर्मोंमें चित्तको मत जाने दो, पापसमूहका परिमार्जन करो, संसारसुखमें दोषानुसन्धान करो, आत्मजिज्ञासाके लिये प्रयत्न करो और शीघ्र ही गृहका त्याग कर दो॥ १॥ सज्जनोंका संग करो, भगवान्‌की दृढ़ भक्तिका आश्रय लो, शम-दमादिका भलीभाँति संचय करो

सद्विद्वानुपसर्प्यतां प्रतिदिनं तत्पादुका सेव्यतां
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम्॥ २॥
वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरःपक्षः समाश्रीयतां
दुस्तर्कात्सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसन्धीयताम्।
ब्रह्मैवास्मि विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यतां
देहेऽहम्मतिरुज्झ्यतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम्॥ ३॥
क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन सन्तुष्यताम्।
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यता-
मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपा नैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम्॥ ४॥
एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम्।

और कर्मोंका शीघ्र ही दृढ़तापूर्वक त्याग कर दो, सच्चे (परमार्थ जाननेवाले) विद्वान्‌के पास नित्य जाओ और उनकी चरणपादुकाका सेवन करो, उनसे एकाक्षरब्रह्मकी जिज्ञासा करो और वेदोंके महावाक्योंका श्रवण करो॥ २॥ महावाक्यके अर्थका विचार करो, महावाक्यका आश्रय लो, कुतर्कसे दूर रहो और श्रुति-सम्मत तर्कका अनुसन्धान करो; 'मैं भी ब्रह्म ही हूँ'—नित्य ऐसी भावना करो, अभिमानको त्याग दो, देहमें अहंबुद्धि छोड़ दो और विचारवान् पुरुषोंके साथ वाद-विवाद मत करो॥ ३॥ क्षुधारूप व्याधिकी प्रतिदिन चिकित्सा करो, भिक्षारूप औषधका सेवन करो, स्वादु अन्नकी याचना मत करो, दैवयोगसे जो मिल जाय उसीसे सन्तोष करो, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहन करो और व्यर्थ वाक्य मत उच्चारण करो, उदासीनता धारण करो, अन्य मनुष्योंकी कृपाकी इच्छा तथा निष्ठुरताको त्याग दो॥ ४॥ एकान्तमें सुखसे बैठो, परब्रह्ममें चित्त लगा दो, पूर्णात्माको अच्छी तरह देखो,

प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां
प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम्॥ ५॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं पठते मनुष्यः
सञ्चिन्तयत्यनुदिनं स्थिरतामुपेत्य।
तस्याशु संसृतिदवानलतीव्रघोर-
तापः प्रशान्तिमुपयाति चितिप्रसादात्॥ ६॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं साधनपंचकं सम्पूर्णम्।

७४—धन्याष्टकम्

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां
तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम्।
ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः
शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति॥ १॥

और इस जगत्‌को उसके द्वारा बाधित देखो, संचित कर्मोंका नाश कर दो, ज्ञानके बलसे क्रियमाण कर्मोंसे लिप्त मत होओ; प्रारब्ध कर्मको यहीं भोग लो, इसके बाद परब्रह्मरूपसे (एकीभाव होकर) स्थित हो जाओ॥ ५॥ जो मनुष्य इन पाँचों श्लोकोंको पढ़ता है और स्थिरचित्तसे प्रतिदिन इनका मनन करता है, उसके संसारदावानलके तीव्र घोर ताप, आत्मप्रसादके होनेसे शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं॥ ६॥

जो इन्द्रियोंको शान्त करनेवाला है, वही ज्ञान है। जो उपनिषदोंका निश्चितार्थ है, वही ज्ञेय है। जिनकी समस्त चेष्टाएँ परमार्थदृष्टिसे ही होती हैं, वे ही पृथ्वीतलमें धन्य हैं और सब तो भूलभुलैयेमें ही भटकते रहते हैं॥ १॥

आदौ विजित्य विषयान्मदमोहराग-
द्वेषादिशत्रुगणमाहृतयोगराज्याः।
ज्ञात्वामृतं समनुभूतपरात्मविद्या-
कान्तासुखा बत गृहे विचरन्ति धन्याः॥ २॥

त्यक्त्वा गृहे रतिमधोगतिहेतुभूता-
मात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिबन्तः।
वीतस्पृहा विषयभोगपदे विरक्ता
धन्याश्चरन्ति विजनेषु विरक्तसङ्गाः॥ ३॥

त्यक्त्वा ममाहमिति बन्धकरे पदे द्वे
मानावमानसदृशाः समदर्शिनश्च।
कर्तारमन्यमवगम्य तदर्पितानि
कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि धन्याः॥ ४॥

प्रथम विषयसमूह तथा मद, मोह, राग और द्वेष आदि शत्रुओंको जीतकर, योगसाम्राज्यको पाकर, अमृतपदका ज्ञान प्राप्तकर, ब्रह्मविद्यारूपिणी कान्ताका सुखानुभव करते हुए, मानो घरमें ही विचरण करते हैं, वे योगीजन धन्य हैं॥ २॥ अधोगतिके हेतुभूत घरके मोहको छोड़कर, आत्मजिज्ञासासे उपनिषदर्थभूत ब्रह्मानन्दका पान करते हुए, निःस्पृह होकर, विषय-भोगोंसे विरक्त हो, जो निःसंगभावसे जनशून्य स्थानोंमें विचरते हैं, वे धन्य हैं॥ ३॥ जो मैं और मेरा रूप दोनों बन्धनकारी भावोंको छोड़कर, मानापमानको समान समझते हुए, समदर्शी होकर तथा अपनेसे पृथग्भूत कर्ताको जानकर सम्पूर्ण कर्मफल उसको समर्पण करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं॥ ४॥

त्यक्त्वैषणात्रयमवेक्षितमोक्षमार्गा
भैक्षामृतेन परिकल्पितदेहयात्राः।
ज्योतिः परात्परतरं परमात्मसंज्ञं
धन्या द्विजा रहसि हृद्यवलोकयन्ति॥ ५॥

नासन्न सन्न सदसन्न महन्न चाणु
न स्त्री पुमान्न च नपुंसकमेकबीजम्।
यैर्ब्रह्म तत्समनुपासितमेकचित्ता
धन्या विरेजुरितरे भवपाशबद्धाः॥ ६॥

अज्ञानपङ्कपरिमग्नमपेतसारं
दुःखालयं मरणजन्मजरावसक्तम्।
संसारबन्धनमनित्यमवेक्ष्य धन्या
ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति॥ ७॥

लोकैषणा, पुत्रैषणा तथा वित्तैषणा—तीनोंको छोड़कर मुक्तिमार्गका अनुशीलन करके भिक्षामृतसे शरीरयात्राका निर्वाह करते हुए; जो परमात्मसंज्ञक परात्पर ज्योतिको एकान्तदेशमें अपने हृदयमें अवलोकन करते हैं, वे द्विज धन्य हैं॥ ५॥ जो न असत् है, न सत् है और न सदसत् है; न महान् है, न अणु है; न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है; संसारका एकमात्र कारण है, उस ब्रह्मकी जिन्होंने उपासना की है, एकाग्रचित्त वे ही धन्य पुरुष सुशोभित होते हैं, और तो सब संसारबन्धनमें बँधे हुए हैं॥ ६॥ जो पंकमें सने हुए, अज्ञान, निःसार, दुःखरूप, जन्मजरामरणादिसमन्वित, संसारबन्धनको अनित्य देखकर उसको ज्ञानरूपी खड्गसे काटकर आत्मतत्त्वका निश्चय करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं॥ ७॥

शान्तैरनन्यमतिभिर्मधुरस्वभावै-
रेकत्वनिश्चितमनोभिरपेतमोहैः।
साकं वनेषु विजितात्मपदस्वरूपं
शास्त्रेषु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः॥ ८॥
अहिमिव जनयोगं सर्वदा वर्जयेद्यः
कुणपमिव सुनारीं त्यक्तुकामो विरागी।
विषमिव विषयान्यो मन्यमानो दुरन्तान्
जयति परमहंसो मुक्तिभावं समेति॥ ९॥
सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमा
गाङ्गं वारि समस्तवारिनिवहाः पुण्याः समस्ताः क्रियाः।
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी
सर्वावस्थितिरस्य वस्तु विषया दृष्टे परब्रह्मणि॥ १०॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं धन्याष्टकं सम्पूर्णम्

जिन्होंने मनके द्वारा एकत्वका निश्चय किया है और मोहको त्याग दिया है, ऐसे शान्त, अनन्यमति और कोमलचित्त महात्माओंके साथ जो लोग वनमें शास्त्रोंद्वारा आत्मतत्त्वका निरन्तर विचार करते हैं, वे धन्य हैं॥ ८॥ जो जनसमूहको सदा सर्प-सहवासके समान त्यागता है, सुन्दर स्त्रीकी वैराग्यभावसे शवके समान उपेक्षा करता है, दुस्त्यज विषयोंको विषके समान छोड़ता है, उस परमहंसकी जय हो, जय हो। वही मुक्तिको प्राप्त होता है॥ ९॥ जिसने परब्रह्मका साक्षात्कार कर लिया है, उसके लिये सारा संसार नन्दनवन है, समस्त वृक्ष कल्पवृक्ष हैं, सम्पूर्ण जल गंगाजल है, उसकी सारी क्रियाएँ पवित्र हैं, उसकी वाणी प्राकृत हो अथवा संस्कृत हो वेदकी सारभूत है, उसके लिये सम्पूर्ण भूमण्डल काशी (मुक्तिक्षेत्र) ही है तथा और भी उसकी जो-जो चेष्टाएँ हैं, सब परमार्थमयी ही हैं॥ १०॥

७५—कौपीनपञ्चकं स्तोत्रम्

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः।
अशोकवन्तः करुणैकवन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ १॥
मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः पाणिद्वये भोक्तुममत्रयन्तः।
कन्थामपि स्त्रीमिव कुत्सयन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ २॥
देहाभिमानं परिहृत्य दूरादात्मानमात्मन्यवलोकयन्तः।
अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ ३॥
स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः स्वशान्तसर्वेन्द्रियवृत्तिमन्तः।
नान्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ ४॥
पञ्चाक्षरं पावनमुच्चरन्तः पतिं पशूनां हृदि भावयन्तः।
भिक्षाशना दिक्षु परिभ्रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ ५॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कौपीनपञ्चकं (यतिपंचकं) सम्पूर्णम्।

सदैव उपनिषद्-वाक्योंमें रमते हुए, भिक्षाके अन्नमात्रमें ही सन्तोष रखते हुए, शोकरहित तथा दयावान्, कौपीन धारण करनेवाले ही भाग्यवान् हैं॥ १॥ केवल वृक्षतलोंमें रहनेवाले, दोनों हाथोंको ही भोजनपात्र बनानेवाले, गुदड़ीको भी स्त्रीकी भाँति तुच्छ बुद्धिसे देखनेवाले कौपीनधारी ही भाग्यवान् हैं॥ २॥ देहाभिमानको दूरसे ही छोड़कर, अपनी आत्माको अपनेमें ही देखते हुए रात-दिन ब्रह्ममें रमण करनेवाले कौपीनधारी ही भाग्यवान् हैं॥ ३॥ आत्मानन्दमें ही सन्तुष्ट रहनेवाले, अपने भीतर ही सारी इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ शान्त कर लेनेवाले, अन्त, मध्य और बाहरकी स्मृतिसे शून्य रहनेवाले कौपीनधारी ही भाग्यवान् हैं॥ ४॥ पवित्र पञ्चाक्षरमन्त्र (**नमः शिवाय**) का जप करते हुए, हृदयमें परमेश्वरकी भावना करते तथा भिक्षाका भोजन करते हुए सब दिशाओंमें विचरनेवाले कौपीनधारी ही भाग्यवान् हैं॥ ५॥

७६—परापूजा

अखण्डे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि।
स्थितेऽद्वितीयभावेऽस्मिन्कथं पूजा विधीयते॥ १॥

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः॥ २॥

निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च।
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम्॥ ३॥

निर्लेपस्य कुतो गन्धः पुष्पं निर्वासनस्य च।
निर्विशेषस्य का भूषा कोऽलङ्कारो निराकृतेः॥ ४॥

निरञ्जनस्य किं धूपैर्दीपैर्वा सर्वसाक्षिणः।
निजानन्दैकतृप्तस्य नैवेद्यं किं भवेदिह॥ ५॥

अखण्ड, सच्चिदानन्द और निर्विकल्पैकरूप अद्वितीय भावके स्थिर हो जानेपर, किस प्रकार पूजा की जाय?॥ १॥ जो पूर्ण है उसका आवाहन कहाँ किया जाय? जो सबका आधार है, उसे आसन किस वस्तुका दें? जो स्वच्छ है, उसको पाद्य और अर्घ्य कैसे दें? और जो नित्य शुद्ध है, उसको आचमनकी क्या अपेक्षा?॥ २॥ निर्मलको स्नान कैसा? सम्पूर्ण विश्व जिसके पेटमें है, उसे वस्त्र कैसा? और जो वर्ण तथा गोत्रसे रहित है, उसके लिये यज्ञोपवीत कैसा?॥ ३॥ निर्लेपको गन्ध कैसी? निर्वासनिकको पुष्पोंसे क्या? निर्विशेषको शोभाकी क्या अपेक्षा और निराकारके लिये आभूषण क्या?॥ ४॥ निरंजनको धूपसे क्या? सर्वसाक्षीको दीप कैसा तथा जो निजानन्दरूपी अमृतसे तृप्त है, उसे नैवेद्यसे क्या?॥ ५॥

विश्वानन्दपितुस्तस्य किं ताम्बूलं प्रकल्प्यते।
स्वयंप्रकाशचिद्रूपो योऽसावर्कादिभासकः॥ ६॥

प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः।
वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते॥ ७॥

स्वयंप्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः।
अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत्॥ ८॥

एवमेव परापूजा सर्वावस्थासु सर्वदा।
एकबुद्ध्या तु देवेशे विधेया ब्रह्मवित्तमैः॥ ९॥

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।

जो स्वयंप्रकाश, चित्स्वरूप, सूर्य-चन्द्रादिका भी अवभासक और विश्वको आनन्दित करनेवाला है, उसे ताम्बूल क्या समर्पण किया जाय?॥ ६॥ अनन्तकी परिक्रमा कैसी ? अद्वितीयको नमस्कार कैसा ? और जो वेदवाक्योंसे भी जाना नहीं जा सकता, उसका स्तवन कैसे किया जाय ?॥ ७॥ जो स्वयंप्रकाश और विभु है, उसकी आरती कैसे की जाय ? तथा जो बाहर-भीतर सब ओर परिपूर्ण है, उसका विसर्जन कैसे हो ?॥ ८॥ ब्रह्मवेत्ताओंको सर्वदा, सब अवस्थाओंमें इसी प्रकार एक बुद्धिसे भगवान्‌की परापूजा करनी चाहिये॥ ९॥ हे शम्भो! मेरी आत्मा ही तुम हो, बुद्धि श्रीपार्वतीजी हैं, प्राण आपके गण हैं, शरीर आपकी कुटिया है, नाना प्रकारकी भोगसामग्री आपका पूजोपचार है, निद्रा समाधि

संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥ १०॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं परापूजास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

७७—चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥ १॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे॥
(ध्रुवपदम्)

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः।
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः। भज०॥ २॥

है, मेरे चरणोंका चलना आपकी प्रदक्षिणा है और मैं जो कुछ भी बोलता हूँ वह सब आपके स्तोत्र हैं, अधिक क्या ? मैं जो कुछ भी करता हूँ, वह सब आपकी आराधना ही है॥ १०॥

दिन और रात, सायंकाल और प्रातःकाल, शिशिर और वसन्त पुनः-पुनः आते हैं; इसी प्रकार कालकी लीला होती रहती है और आयु बीत जाती है, किन्तु आशारूपी वायु छोड़ती ही नहीं; अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**'* यह रटना रक्षा नहीं कर सकेगी॥ १॥ दिनमें आगे अग्नि और पीछे सूर्यसे शरीर तपाते हैं, रात्रिके समय जानुओंमें ठोड़ी दबाये पड़े रहते हैं, हाथमें ही भिक्षा माँग लाते हैं, वृक्षके

* व्याकरणमें 'डुकृञ् करणे' एक धातु है, इसे एक ब्राह्मणको वृद्ध होनेपर भी रटते देखकर श्रीशंकराचार्यजीने यह उपदेश किया।

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाद्धावति जर्जरदेहे वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे। भज० ॥ ३ ॥
जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि च न पश्यति लोको ह्युदरनिमित्तं बहुकृतशोकः। भज० ॥ ४ ॥
भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजललवकणिकापीता।
सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम्। भज० ॥ ५ ॥
अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्। भज० ॥ ६ ॥

तले ही पड़े रहते हैं, फिर भी आशाका जाल जकड़े ही रहता है; अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा नहीं कर सकेगी॥ २॥ अरे, जबतक तू धन कमानेमें लगा हुआ है तभीतक तेरा परिवार तुझसे प्रेम करता है, जब जराग्रस्त होगा तो घरमें कोई बात भी न पूछेगा; अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ३॥ जटाजूटधारी होकर, मुण्डित होकर, लुंचितकेश होकर, काषायाम्बरधारी होकर, ऐसे नाना प्रकारके वेष धारण करके यह मनुष्य देखता हुआ भी नहीं देखता और पेटके लिये ही नाना प्रकारसे शोक किया करता है; अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ४॥ जिसने भगवद्गीताको कुछ भी पढ़ा है, गंगाजलकी जिसने एक बूँद भी पी है, एक बार भी जिसने भगवान् कृष्णचन्द्रका अर्चन किया है, उसकी यमराज क्या चर्चा कर सकता है? अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ५॥ अंग गलित हो गये, सिरके बाल पक गये, मुखमें दाँत नहीं रहे, बूढ़ा हो गया, लाठी लेकर चलने लगा, फिर भी आशा पिण्ड नहीं छोड़ती; अरे मूढ! निरन्तर गोविन्दको भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ६॥

बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः पारे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः । भज० ॥ ७ ॥
पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
इह संसारे खलु दुस्तारे कृपयापारे पाहि मुरारे । भज० ॥ ८ ॥
पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः ।
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् । भज० ॥ ९ ॥
वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः ।
नष्टे द्रव्ये कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः । भज० ॥ १० ॥

बालक तो खेल-कूदमें आसक्त रहता है, तरुण तो स्त्रीमें आसक्त है और वृद्ध भी नाना प्रकारकी चिन्ताओंमें मग्न रहता है, परब्रह्ममें तो कोई संलग्न नहीं होता; अतः अरे मूढ! तू सदा गोविन्दका ही भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ ७ ॥ इस संसारमें पुनः-पुनः जन्म, पुनः-पुनः मरण और बारंबार माताके गर्भमें रहना पड़ता है, अतः हे मुरारे! मैं आपकी शरण हूँ, इस दुस्तर और अपार संसारसे कृपया पार कीजिये; इस प्रकार अरे मूढ! तू तो सदा गोविन्दका ही भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ ८ ॥ रात्रि, दिन, पक्ष, मास, अयन और वर्ष कितनी ही बार आये और गये तो भी लोग ईर्ष्या और आशाको नहीं छोड़ते, अतः अरे मूढ! तू सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ ९ ॥ अवस्था ढलनेपर काम-विकार कैसा ? जल सूखनेपर जलाशय क्या ? तथा धन नष्ट होनेपर परिवार ही क्या ? इसी प्रकार तत्त्वज्ञान होनेपर संसार ही कहाँ रह सकता है ? अतः हे मूढ! सदा गोविन्दको भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी ॥ १० ॥

नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम्।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय बारम्बारम्। भज०॥ ११॥
कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्। भज०॥ १२॥
गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्। भज०॥ १३॥
यावज्जीवो निवसति देहे कुशलं तावत्पृच्छति गेहे।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये। भज०॥ १४॥
सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्। भज०॥ १५॥

नारीके स्तनों और नाभिनिवेशमें मिथ्या माया और मोहका ही आवेश है, ये मांस और मेदके ही विकार हैं—ऐसा बार-बार मनमें विचार, हे मूढ! सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ११॥ स्वप्नवत् मिथ्या संसारकी आस्था छोड़कर 'तू कौन है, मैं कौन हूँ कहाँसे आया हूँ, मेरी माता कौन है और पिता कौन है ?'—इस प्रकार सबको असार समझ तथा हे मूढ! निरन्तर गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १२॥ गीता और विष्णुसहस्रनामका नित्य पाठ करना चाहिये, भगवान् विष्णुके स्वरूपका निरन्तर ध्यान करना चाहिये, चित्तको संतजनोंके संगमें लगाना चाहिये और दीनजनोंको धन दान करना चाहिये और हे मूढ! नित्य गोविन्दका ही भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १३॥ जबतक प्राण शरीरमें है तबतक ही लोग घरमें कुशल पूछते हैं, प्राण निकलनेपर शरीरका पतन हुआ कि फिर अपनी स्त्री भी उससे भय मानती है; अतः हे मूढ! नित्य गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १४॥ पहले तो सुखसे स्त्री-सम्भोग किया जाता है, किन्तु पीछे शरीरमें रोग घर कर लेते हैं, यद्यपि संसारमें मरना अवश्य है तथापि लोग

रथ्याचर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः।
नाहं न त्वं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः। भज० ॥ १६ ॥
कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन मुक्तिं न भजति जन्मशतेन। भज० ॥ १७ ॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

७८—द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम्॥ १ ॥

पापाचरणको नहीं छोड़ते; अतः हे मूढ! सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १५॥ गलीमें पड़े चिथड़ोंकी कन्था बना ली, पुण्यापुण्यसे निराला मार्ग अवलम्बन कर लिया, 'न मैं हूँ, न तू है और न यह संसार है'—(ऐसा भी जान लिया), फिर भी किस लिये शोक किया जाता है? अतः हे मूढ! सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १६॥ चाहे गंगा-सागरको जाय, चाहे नाना व्रतोपवासोंका पालन अथवा दान करे तथापि बिना ज्ञानके इन सबसे सौ जन्ममें भी मुक्ति नहीं हो सकती; अतः हे मूढ! सर्वदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' (अथवा हा धन! हा कुटुम्ब!! हा संसार!!!) यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १७॥

हे मूढ! धनसंचयकी लालसाको छोड़, सुबुद्धि धारण कर, मनसे तृष्णाहीन हो, अपने प्रारब्धानुसार तुझे जो कुछ वित्त मिल जाय, उसीसे चित्तको प्रसन्न रख और हे मूढमते! निरन्तर गोविन्दको भज॥ १॥

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥
(ध्रुवपदम्)

अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः। भज०॥ २॥
का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः। भज०॥ ३॥
मा कुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात्कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा। भज०॥ ४॥
कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम्।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः। भज०॥ ५॥
सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः। भज०॥ ६॥

अर्थको नित्य अनर्थरूप जान, उसमें सचमुच ही सुखका लेश भी नहीं है, अरे! सभी जगह ऐसी नीति देखी है कि धनवान्‌को तो अपने पुत्रसे भी भय रहता है; इसलिये सदा गोविन्दको भज॥ २॥ कौन तेरी स्त्री है ? कौन तेरा पुत्र! अरे ? यह संसार बड़ा विचित्र है, भाई! इसी तत्त्वका निरन्तर विचार कर कि, 'तू कौन है ? किसका है ? और कहाँसे आया है ?' और गोविन्दको भज॥ ३॥ धन, जन और यौवनका गर्व मत कर, काल पलक मारते ही इन सबको नष्ट कर देता है, इस सम्पूर्ण मायामय प्रपंचको छोड़कर, ब्रह्मपदको जानकर उसीमें प्रवेश कर; और हे मूढ! सदा! गोविन्दको भज॥ ४॥ काम, क्रोध, लोभ, मोहको त्यागकर अपने लिये विचार कर कि 'मैं कौन हूँ' जो मूढ़ आत्मज्ञानसे रहित हैं, वे नरकमें पड़े हुए सन्तप्त होते रहते हैं; अतः सदा गोविन्दको भज॥ ५॥ देवमन्दिर अथवा वृक्षतलका निवास, पृथ्वीकी ही शय्या, मृगचर्मका वस्त्र और सब प्रकारके परिग्रह और भोगोंका त्याग है, ऐसा वैराग्य किसको सुख नहीं पहुँचाता ? अतः सदा गोविन्दको भज॥ ६॥

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्। भज० ॥ ७ ॥
त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम्। भज० ॥ ८ ॥
प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम्।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम्। भज० ॥ ९ ॥
नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशय चपलम्।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम्। भज० ॥ १० ॥
का तेऽष्टादशदेशे चिन्ता वातुल तव किं नास्ति नियन्ता।
यस्त्वां हस्ते सुदृढनिबद्धं बोधयति प्रभवादिविरुद्धम्। भज० ॥ ११ ॥

यदि तू शीघ्र विष्णुत्वकी प्राप्तिका अभिलाषी है तो शत्रु, मित्र, पुत्र और बन्धुओंसे मेल अथवा अनमेलका प्रयत्न मत कर और सर्वत्र समभाव रख तथा निरन्तर गोविन्दको भज॥ ७॥ तुझमें, मुझमें और अन्यत्र भी सबमें एक ही वासुदेव हैं, इसलिये कोप करना व्यर्थ है, सबको सहन करनेवाला हो, आत्माको ही सबमें देख, भेदरूपी अज्ञानको सर्वत्र त्याग दे और सर्वदा गोविन्दका भजन कर॥ ८॥ प्राणायाम, प्रत्याहार और नित्यानित्य वस्तुका विवेकपूर्वक विचार कर, विधिपूर्वक भगवन्नामस्मरणके सहित ध्यान करनेका निश्चय कर; क्योंकि यही महान् निश्चय है और सदा गोविन्दका भजन कर॥ ९॥ कमलपत्रपर पड़ी हुई बूँद जैसे स्थिर नहीं होती है वैसा ही अति चंचल यह जीवन है; इसे खूब समझ ले, व्याधि और अभिमानसे ग्रस्त हुआ यह सारा संसार अति शोकाकुल है, अतः तू सदा गोविन्दका भजन कर॥ १०॥ रे पागल जीव! तू अठारह जगहकी चिन्ता क्यों कर रहा है, क्या तुम्हारा कोई नियन्ता नहीं है? जो तुम्हारे दोनों हाथ खूब कसके बाँधकर तुम्हें जन्म-मरणादि विकारोंसे रहित आत्मतत्त्वका बोध करा दे; अरे मूढ! सर्वदा गोविन्दका भजन कर॥ ११॥

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव मुक्तः।
सेन्द्रियमानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम्। भज० ॥ १२ ॥
द्वादशपञ्जरिकामय एषः शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः।
येषां चित्ते नैव विवेकस्ते पच्यन्ते नरकमनेकम्। भज० ॥ १३ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

७९—गौरीशाष्टकम्

भज गौरीशं भज गौरीशं गौरीशं भज मन्दमते।
(ध्रुवपदम्)

जलभवदुस्तरजलधिसुतरणं ध्येयं चित्ते शिवहरचरणम्।
अन्योपायं न हि न हि सत्यं गेयं शङ्कर शङ्कर नित्यम्। भज० ॥ १ ॥
दारापत्यं क्षेत्रं वित्तं देहं गेहं सर्वमनित्यम्।
इति परिभावय सर्वमसारं गर्भविकृत्या स्वप्नविचारम्। भज० ॥ २ ॥

गुरुदेवके चरणकमलोंका अनन्य भक्त होकर संसारसे शीघ्र ही मुक्त हो जा, इस प्रकार इन्द्रियोंके सहित मनका संयम करनेसे तू शीघ्र ही अपने हृदयस्थ देवको देखेगा; अतः निरन्तर गोविन्दका भजन कर॥ १२॥ यह द्वादशपंजरिकास्तोत्र शिष्योंके उपदेशके लिये कहा गया है, जिनके हृदयमें विवेक नहीं है, वे दीर्घकालतक नरकयातना भोगते हैं; अतः हे मूढमते! तू निरन्तर गोविन्दका भजन कर॥ १३॥

हे मन्दबुद्धिवाले! तू सदा गौरीश (शंकरभगवान्) का भजन कर। संसाररूप दुस्तर सागरसे पार लगानेवाले, भगवान् शिवके ही चरणका ध्यान कर, संसारसे उद्धार पानेका दूसरा कोई उपाय ही नहीं है; यह सत्य जान; सदा शंकरके नामका ही गान किया कर। हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ १ ॥ स्त्री, सन्तान, क्षेत्र, धन, शरीर और गृह—ये सब अनित्य हैं, गर्भविकारके परिणामभूत इस संसारको सारहीन तथा स्वप्नवत् असत्य समझकर

मलवैचित्ये पुनरावृत्तिः पुनरपि जननीजठरोत्पत्तिः।
पुनरप्याशाकुलितं जठरं किं नहि मुञ्चसि कथयेश्चित्तम्। भज० ॥ ३ ॥
मायाकल्पितमैन्द्रं जालं न हि तत्सत्यं दृष्टिविकारम्।
ज्ञाते तत्त्वे सर्वमसारं मा कुरु मा कुरु विषयविचारम्। भज० ॥ ४ ॥
रज्जौ सर्पभ्रमणारोपस्तद्वद्ब्रह्मणि जगदारोपः।
मिथ्यामायामोहविकारं मनसि विचारय बारम्बारम्। भज० ॥ ५ ॥
अध्वरकोटीगङ्गागमनं कुरुते योगं चेन्द्रियदमनम्।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन न भवति मुक्तो जन्मशतेन। भज० ॥ ६ ॥
सोऽहं हंसो ब्रह्मैवाहं शुद्धानन्दस्तत्त्वपरोऽहम्।
अद्वैतोऽहं सङ्गविहीने चेन्द्रिय आत्मनि निखिले लीने। भज० ॥ ७ ॥

सबकी उपेक्षा कर दे; हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज ॥ २ ॥ मलभूत संसारके रूपपर मोहित होनेसे पुनः संसारमें लौटना पड़ता है, फिर माताके गर्भसे उत्पत्ति होती है, अतः पुनः आशासे व्याकुल हुए अपने चित्तसे तू कह दे कि रे चित्त! क्यों नहीं इस पेटकी चिन्ताको छोड़ता है ? और हे मन्दमते! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज ॥ ३ ॥ अरे, यह सारा प्रपंच मायासे कल्पित इन्द्रजाल है, इसका विकार प्रत्यक्ष देखा गया है, इसे कदापि सत्य न जान, तत्त्वज्ञान हो जानेपर सब कुछ असार ही ठहरता है, इसलिये विषयोपभोगका विचार कभी न कर; हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज ॥ ४ ॥ जैसे रज्जुमें भ्रमसे सर्पका आरोप होता है, उसी प्रकार शुद्ध ब्रह्ममें जगत्का आरोपमात्र है, यह माया-मोहका विकार असत्य है, इस बातको तू बारम्बार मनमें विचार। हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज ॥ ५ ॥ लोग करोड़ों यज्ञ करते हैं, स्नानार्थ गंगाजी जाते हैं, इन्द्रियोंको दमन करनेवाला योग करते हैं, परन्तु यह सबका सिद्धान्तमत है कि ज्ञानहीन जीव सैकड़ों जन्ममें भी मुक्त नहीं हो सकता; इसलिये हे मन्दमते! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवका भजन कर ॥ ६ ॥ जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ विषयोंसे निवृत्त होकर आत्मामें लीन हो जाती हैं उस

शङ्करकिङ्कर मा कुरु चिन्तां चिन्तामणिना विरचितमेतत्।
यः सद्भक्त्या पठति हि नित्यं
ब्रह्मणि लीनो भवति हि सत्यम्। भज० ॥ ८ ॥

इति श्रीचिन्तामणिविरचितं गौरीशाष्टकं सम्पूर्णम्।

८०—सप्तश्लोकी गीता

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ १ ॥
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥ २ ॥

समय ऐसा भान होने लगता है कि मैं ही वह परमात्मा हूँ, मैं शुद्ध ब्रह्म ही हूँ तथा इन पंचभूतोंसे पृथक् शुद्ध अद्वैत आनन्दस्वरूप हूँ; हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवका भजन कर॥ ७॥ हे शिवके सेवक! तू चिन्ता न कर, क्योंकि जो पुरुष चिन्तामणिद्वारा रचित इस गौरीशाष्टकस्तोत्रका शुद्ध भक्तिसे नित्य पाठ करता है, वह ब्रह्ममें लीन हो जाता है, यह सत्य बात है; इसलिये हे मन्दमते! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ ८ ॥

'ओम्' इस एक अक्षररूप ब्रह्मके नामका उच्चारण करता हुआ और ओंकारके अर्थस्वरूप मुझको स्मरण करता हुआ, जो मनुष्य शरीरको छोड़ता (मरता) है, वह परम गतिको प्राप्त हो जाता है॥ १ ॥ हे हृषीकेश! आपके

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ ३॥
कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ ४॥
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ ५॥

गुणोंके कीर्तनसे जो जगत् प्रसन्न और प्रेमान्वित हो रहा है, यह उचित ही है, ये राक्षसलोग भयभीत होकर सब दिशाओंमें भाग रहे हैं और सब सिद्धगण आपको नमस्कार कर रहे हैं यह भी युक्त ही है॥ २॥ 'वह' सब ओर रहनेवाले हाथों और चरणोंसे युक्त है तथा सब ओर रहनेवाले आँखों, सिरों और मुखोंसे युक्त है एवं सब ओर व्यापकरूपसे रहनेवाली श्रवणेन्द्रियोंसे भी युक्त है और समस्त जगत्को व्याप्त कर स्थित है॥ ३॥ जो सर्वज्ञ है और सबसे प्राचीन, जगत्का शासन करनेवाला सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, सबका धाता (सब प्राणियोंको कर्मानुसार पृथक्-पृथक् फल देनेवाला) है, जिसके रूपका चिन्तन अशक्य है, जो सूर्यके समान प्रकाशमय वर्णवाला है और जो अज्ञानसे अतीत है, उसको जो स्मरण करता है [वह उस परमपुरुषको प्राप्त होता है]॥ ४॥ जिसका ऊर्ध्व (ब्रह्म[१]) ही मूल है और नीचे शाखाएँ (अहंकार[२] तन्मात्रा आदि रूपवाली) हैं, ऐसे इस संसाररूप अश्वत्थवृक्षको अव्यय[३] (अविनाशी) कहते हैं, ऋक्, यजु और सामवेद जिसके पत्र[४] हैं; जो संसारवृक्षको इस रूपसे जानता है, वह वेदोंके अर्थोंका जाननेवाला है॥ ५॥

---

१. कालसे भी सूक्ष्म, जगत्का कारण नित्य और महान् होनेसे ब्रह्मको ही ऊर्ध्व कहा गया है।

२. महत् अहंकार, तन्मात्रा आदि इसके शाखाके समान नीचे होनेसे शाखा हैं।

३. संसारवृक्ष अनादिकालसे चला आता है इससे अव्यय है।

४. वेदोंसे इस वृक्षकी रक्षा है अतः इन (वेदों) को पत्ररूपसे कहा गया।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥ ६॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ ७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सप्तश्लोकी गीता सम्पूर्णा।

८१—चतुःश्लोकी भागवतम्

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥ १॥
यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥ २॥

मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा होकर उनके हृदयोंमें प्रविष्ट हूँ, उनके स्मृति, ज्ञान और इन दोनोंका लोप भी मुझसे ही हुआ करते हैं, सम्पूर्ण वेदोंसे मैं ही जाननेयोग्य हूँ और वेदान्तका कर्ता तथा वेदार्थको जाननेवाला भी मैं ही हूँ॥ ६॥ तू मेरेमें ही मन लगानेवाला, मेरा ही भक्त, मेरी ही पूजा करनेवाला हो और मुझको ही नमस्कार कर। इस प्रकार चित्तको मुझमें युक्त कर मत्परायण हुआ मुझे ही प्राप्त करेगा॥ ७॥

श्रीभगवान् बोले—[हे चतुरानन!] मेरा जो ज्ञान परम गोप्य है, विज्ञान (अनुभव) से युक्त है और भक्तिके सहित है उसको और उसके साधनको मैं कहता हूँ सुनो॥ १॥ मेरे जितने स्वरूप हैं, जिस प्रकार मेरी सत्ता है और जो मेरे रूप, गुण, कर्म हैं, मेरी कृपासे तुमको उसी प्रकार तत्त्वका विज्ञान हो॥ २॥

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ ३॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥ ४॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥ ५॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा॥ ६॥
एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना।
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्॥ ७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्वितीयस्कन्धे भगवद्ब्रह्मसंवादे चतुःश्लोकी भागवतं समाप्तम्।

सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था, मेरे अतिरिक्त जो स्थूल, सूक्ष्म या प्रकृति हैं—इनमेंसे कुछ भी न था, सृष्टिके पश्चात् भी मैं ही था, जो यह जगत् (दृश्यमान) है, यह भी मैं ही हूँ और प्रलयकालमें जो शेष रहता है वह मैं ही हूँ॥ ३॥ जिसके कारण आत्मामें वास्तविक अर्थके न रहते हुए भी उसकी प्रतीति हो और अर्थके रहते हुए भी उसकी प्रतीति न हो, उसीको मेरी माया जानो; जैसे आभास (एक चन्द्रमामें दो चन्द्रमाका भ्रमात्मक ज्ञान) और जैसे राहु (राहु जैसे ग्रहमण्डलोंमें स्थित होकर भी नहीं दीख पड़ता)॥ ४॥ जैसे पाँच महाभूत उच्चावच भौतिक पदार्थोंमें कार्य और कारणभावसे प्रविष्ट और अप्रविष्ट रहते हैं, उसी प्रकार मैं इन भौतिक पदार्थोंमें प्रविष्ट और अप्रविष्ट भी रहता हूँ। [इस प्रकार मेरी सत्ता है]॥ ५॥ आत्माके तत्त्व जिज्ञासुके लिये इतना ही जिज्ञास्य है, जो अन्वयव्यतिरेकसे सर्वत्र और सर्वदा रहे वही आत्मा है॥ ६॥ चित्तकी परम एकाग्रतासे इस मतका अनुष्ठान करें, कल्पकी विविध सृष्टियोंमें आपको कभी भी कर्तापनका अभिमान न होगा॥ ७॥

८२—श्रीमृत्युञ्जयस्तोत्रम्

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं
शिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युतानलसायकम्।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदशालयैरभिवन्दितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ १॥

पञ्चपादपपुष्पगन्धिपदाम्बुजद्वयशोभितं
भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम्।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशिनं भवमव्ययं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ २॥

कैलासके शिखरपर जिनका निवासगृह है, जिन्होंने मेरुगिरिका धनुष, नागराज वासुकिकी प्रत्यंचा और भगवान् विष्णुको अग्निमय बाण बनाकर तत्काल ही दैत्योंके तीनों पुरोंको दग्ध कर डाला था, सम्पूर्ण देवता जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?॥ १॥ मन्दार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन—इन पाँच दिव्य वृक्षोंके पुष्पोंसे सुगन्धित युगल चरणकमल जिनकी शोभा बढ़ाते हैं, जिन्होंने अपने ललाटवर्ती नेत्रसे प्रकट हुई आगकी ज्वालामें कामदेवके शरीरको भस्म कर डाला था, जिनका श्रीविग्रह सदा भस्मसे विभूषित रहता है, जो भव—सबकी उत्पत्तिके कारण होते हुए भी भव-संसारके नाशक हैं तथा जिनका कभी विनाश नहीं होता, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?॥ २॥

रथ्याचर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः।
नाहं न त्वं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः। भज० ॥ १६ ॥
कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन मुक्तिं न भजति जन्मशतेन। भज० ॥ १७ ॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

७८—द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम्॥ १ ॥

पापाचरणको नहीं छोड़ते; अतः हे मूढ! सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १५॥ गलीमें पड़े चिथड़ोंकी कन्था बना ली, पुण्यापुण्यसे निराला मार्ग अवलम्बन कर लिया, 'न मैं हूँ, न तू है और न यह संसार है'—(ऐसा भी जान लिया), फिर भी किस लिये शोक किया जाता है? अतः हे मूढ! सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १६॥ चाहे गंगा-सागरको जाय, चाहे नाना व्रतोपवासोंका पालन अथवा दान करे तथापि बिना ज्ञानके इन सबसे सौ जन्ममें भी मुक्ति नहीं हो सकती; अतः हे मूढ! सर्वदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' (अथवा हा धन! हा कुटुम्ब!! हा संसार!!!) यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १७॥

हे मूढ! धनसंचयकी लालसाको छोड़, सुबुद्धि धारण कर, मनसे तृष्णाहीन हो, अपने प्रारब्धानुसार तुझे जो कुछ वित्त मिल जाय, उसीसे चित्तको प्रसन्न रख और हे मूढमते! निरन्तर गोविन्दको भज॥ १॥

भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं
दक्षयज्ञविनाशिनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम्।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं निखिलाघसंघनिबर्हणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ६॥
भक्तवत्सलमर्चतां निधिमक्षयं हरिदम्बरं
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनूपमम्।
भूमिवारिनभोहुताशनसोमपालितस्वाकृतिं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ७॥
विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं
संहरन्तमथ प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम्।

आभूषण धारण करनेवाले हैं, जिनके श्रीविग्रहके सुन्दर वामभागको गिरिराजकिशोरी उमाने सुशोभित कर रखा है, कालकूट विष पीनेके कारण जिनका कण्ठभाग नीले रंगका दिखायी देता है, जो एक हाथमें फरसा और दूसरेमें मृग लिये रहते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ५॥ जो जन्म-मरणके रोगसे ग्रस्त पुरुषोंके लिये औषधरूप हैं, समस्त आपत्तियोंका निवारण और दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाले हैं, सत्त्व आदि तीनों गुण जिनके स्वरूप हैं, जो तीन नेत्र धारण करते, भोग और मोक्षरूपी फल देते तथा सम्पूर्ण पापराशिका संहार करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ६॥ जो भक्तोंपर दया करनेवाले हैं, अपनी पूजा करनेवाले मनुष्योंके लिये अक्षय निधि होते हुए भी जो स्वयं दिगम्बर रहते हैं, जो सब भूतोंके स्वामी, परात्पर, अप्रमेय और उपमारहित हैं, पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और चन्द्रमाके द्वारा जिनका श्रीविग्रह सुरक्षित है, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ७॥ जो ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते, फिर

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्। भज० ॥ ७ ॥
त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम्। भज० ॥ ८ ॥
प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम्।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम्। भज० ॥ ९ ॥
नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशय चपलम्।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम्। भज० ॥ १० ॥
का तेऽष्टादशदेशे चिन्ता वातुल तव किं नास्ति नियन्ता।
यस्त्वां हस्ते सुदृढनिबद्धं बोधयति प्रभवादिविरुद्धम्। भज० ॥ ११ ॥

यदि तू शीघ्र विष्णुत्वकी प्राप्तिका अभिलाषी है तो शत्रु, मित्र, पुत्र और बन्धुओंसे मेल अथवा अनमेलका प्रयत्न मत कर और सर्वत्र समभाव रख तथा निरन्तर गोविन्दको भज॥ ७॥ तुझमें, मुझमें और अन्यत्र भी सबमें एक ही वासुदेव हैं, इसलिये कोप करना व्यर्थ है, सबको सहन करनेवाला हो, आत्माको ही सबमें देख, भेदरूपी अज्ञानको सर्वत्र त्याग दे और सर्वदा गोविन्दका भजन कर॥ ८॥ प्राणायाम, प्रत्याहार और नित्यानित्य वस्तुका विवेकपूर्वक विचार कर, विधिपूर्वक भगवन्नामस्मरणके सहित ध्यान करनेका निश्चय कर; क्योंकि यही महान् निश्चय है और सदा गोविन्दका भजन कर॥ ९॥ कमलपत्रपर पड़ी हुई बूँद जैसे स्थिर नहीं होती है वैसा ही अति चंचल यह जीवन है; इसे खूब समझ ले, व्याधि और अभिमानसे ग्रस्त हुआ यह सारा संसार अति शोकाकुल है, अतः तू सदा गोविन्दका भजन कर॥ १०॥ रे पागल जीव! तू अठारह जगहकी चिन्ता क्यों कर रहा है, क्या तुम्हारा कोई नियन्ता नहीं है? जो तुम्हारे दोनों हाथ खूब कसके बाँधकर तुम्हें जन्म-मरणादि विकारोंसे रहित आत्मतत्त्वका बोध करा दे; अरे मूढ! सर्वदा गोविन्दका भजन कर॥ ११॥

देवदेवं जगन्नाथं देवेशमृषभध्वजम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १३॥
अनन्तमव्ययं शान्तमक्षमालाधरं हरम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १४॥
आनन्दं परमं नित्यं कैवल्यपदकारणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १५॥
स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १६॥

इति श्रीपद्मपुराणान्तर्गत उत्तरखण्डे श्रीमृत्युञ्जयस्तोत्रं सम्पूर्णम्

(समाप्तेयं स्तोत्ररत्नावली)

भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?॥ १२॥ जो देवताओंके भी आराध्यदेव, जगत्के स्वामी और देवताओंपर भी शासन करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजापर वृषभका चिह्न बना हुआ है, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?॥ १३॥ जो अनन्त, अविकारी, शान्त, रुद्राक्षमालाधारी और सबके दुःखोंका हरण करनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ १४॥ जो परमानन्दस्वरूप, नित्य एवं कैवल्यपद—मोक्षकी प्राप्तिके कारण हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ १५॥ जो स्वर्ग और मोक्षके दाता तथा सृष्टि, पालन और संहारके कर्ता हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ १६॥

मलवैचित्ये पुनरावृत्तिः पुनरपि जननीजठरोत्पत्तिः।
पुनरप्याशाकुलितं जठरं किं नहि मुञ्चसि कथयेश्चित्तम्। भज० ॥ ३ ॥
मायाकल्पितमैन्द्रं जालं न हि तत्सत्यं दृष्टिविकारम्।
ज्ञाते तत्त्वे सर्वमसारं मा कुरु मा कुरु विषयविचारम्। भज० ॥ ४ ॥
रज्जौ सर्पभ्रमणारोपस्तद्वद्ब्रह्मणि जगदारोपः।
मिथ्यामायामोहविकारं मनसि विचारय बारम्बारम्। भज० ॥ ५ ॥
अध्वरकोटीगङ्गागमनं कुरुते योगं चेन्द्रियदमनम्।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन न भवति मुक्तो जन्मशतेन। भज० ॥ ६ ॥
सोऽहं हंसो ब्रह्मैवाहं शुद्धानन्दस्तत्त्वपरोऽहम्।
अद्वैतोऽहं सङ्गविहीने चेन्द्रिय आत्मनि निखिले लीने। भज० ॥ ७ ॥

सबकी उपेक्षा कर दे; हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ २॥ मलभूत संसारके रूपपर मोहित होनेसे पुनः संसारमें लौटना पड़ता है, फिर माताके गर्भसे उत्पत्ति होती है, अतः पुनः आशासे व्याकुल हुए अपने चित्तसे तू कह दे कि रे चित्त! क्यों नहीं इस पेटकी चिन्ताको छोड़ता है ? और हे मन्दमते! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ ३॥ अरे, यह सारा प्रपंच मायासे कल्पित इन्द्रजाल है, इसका विकार प्रत्यक्ष देखा गया है, इसे कदापि सत्य न जान, तत्त्वज्ञान हो जानेपर सब कुछ असार ही ठहरता है, इसलिये विषयोपभोगका विचार कभी न कर; हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ ४॥ जैसे रज्जुमें भ्रमसे सर्पका आरोप होता है, उसी प्रकार शुद्ध ब्रह्ममें जगत्का आरोपमात्र है, यह माया-मोहका विकार असत्य है, इस बातको तू बारम्बार मनमें विचार। हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ ५॥ लोग करोड़ों यज्ञ करते हैं, स्नानार्थ गंगाजी जाते हैं, इन्द्रियोंको दमन करनेवाला योग करते हैं, परन्तु यह सबका सिद्धान्तमत है कि ज्ञानहीन जीव सैकड़ों जन्ममें भी मुक्त नहीं हो सकता; इसलिये हे मन्दमते! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवका भजन कर॥ ६॥ जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ विषयोंसे निवृत्त होकर आत्मामें लीन हो जाती हैं उस

शङ्करकिङ्कर मा कुरु चिन्तां चिन्तामणिना विरचितमेतत्।
यः सद्भक्त्या पठति हि नित्यं
ब्रह्मणि लीनो भवति हि सत्यम्। भज०॥ ८॥

इति श्रीचिन्तामणिविरचितं गौरीशाष्टकं सम्पूर्णम्।

८०—सप्तश्लोकी गीता

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ १॥
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥ २॥

समय ऐसा भान होने लगता है कि मैं ही वह परमात्मा हूँ, मैं शुद्ध ब्रह्म ही हूँ तथा इन पंचभूतोंसे पृथक् शुद्ध अद्वैत आनन्दस्वरूप हूँ; हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवका भजन कर॥ ७॥ हे शिवके सेवक! तू चिन्ता न कर, क्योंकि जो पुरुष चिन्तामणिद्वारा रचित इस गौरीशाष्टकस्तोत्रका शुद्ध भक्तिसे नित्य पाठ करता है, वह ब्रह्ममें लीन हो जाता है, यह सत्य बात है; इसलिये हे मन्दमते! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ ८॥

'ओम्' इस एक अक्षररूप ब्रह्मके नामका उच्चारण करता हुआ और ओंकारके अर्थस्वरूप मुझको स्मरण करता हुआ, जो मनुष्य शरीरको छोड़ता (मरता) है, वह परम गतिको प्राप्त हो जाता है॥ १॥ हे हृषीकेश! आपके

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ ३॥
कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ ४॥
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ ५॥

गुणोंके कीर्तनसे जो जगत् प्रसन्न और प्रेमान्वित हो रहा है, यह उचित ही है, ये राक्षसलोग भयभीत होकर सब दिशाओंमें भाग रहे हैं और सब सिद्धगण आपको नमस्कार कर रहे हैं यह भी युक्त ही है॥ २॥ 'वह' सब ओर रहनेवाले हाथों और चरणोंसे युक्त है तथा सब ओर रहनेवाले आँखों, सिरों और मुखोंसे युक्त है एवं सब ओर व्यापकरूपसे रहनेवाली श्रवणेन्द्रियोंसे भी युक्त है और समस्त जगत्को व्याप्त कर स्थित है॥ ३॥ जो सर्वज्ञ है और सबसे प्राचीन, जगत्का शासन करनेवाला सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, सबका धाता (सब प्राणियोंको कर्मानुसार पृथक्-पृथक् फल देनेवाला) है, जिसके रूपका चिन्तन अशक्य है, जो सूर्यके समान प्रकाशमय वर्णवाला है और जो अज्ञानसे अतीत है, उसको जो स्मरण करता है [वह उस परमपुरुषको प्राप्त होता है]॥ ४॥ जिसका ऊर्ध्व (ब्रह्म[१]) ही मूल है और नीचे शाखाएँ (अहंकार[२] तन्मात्रा आदि रूपवाली) हैं, ऐसे इस संसाररूप अश्वत्थवृक्षको अव्यय[३] (अविनाशी) कहते हैं, ऋक्, यजु और सामवेद जिसके पत्र[४] हैं; जो संसारवृक्षको इस रूपसे जानता है, वह वेदोंके अर्थोंका जाननेवाला है॥ ५॥

---

१. कालसे भी सूक्ष्म, जगत्का कारण नित्य और महान् होनेसे ब्रह्मको ही ऊर्ध्व कहा गया है।
२. महत् अहंकार, तन्मात्रा आदि इसके शाखाके समान नीचे होनेसे शाखा हैं।
३. संसारवृक्ष अनादिकालसे चला आता है इससे अव्यय है।
४. वेदोंसे इस वृक्षकी रक्षा है अतः इन (वेदों) को पत्ररूपसे कहा गया।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥ ६॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ ७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सप्तश्लोकी गीता सम्पूर्णा।

८१—चतुःश्लोकी भागवतम्

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥ १॥
यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥ २॥

मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा होकर उनके हृदयोंमें प्रविष्ट हूँ, उनके स्मृति, ज्ञान और इन दोनोंका लोप भी मुझसे ही हुआ करते हैं, सम्पूर्ण वेदोंसे मैं ही जाननेयोग्य हूँ और वेदान्तका कर्ता तथा वेदार्थको जाननेवाला भी मैं ही हूँ॥ ६॥ तू मेरेमें ही मन लगानेवाला, मेरा ही भक्त, मेरी ही पूजा करनेवाला हो और मुझको ही नमस्कार कर। इस प्रकार चित्तको मुझमें युक्त कर मत्परायण हुआ मुझे ही प्राप्त करेगा॥ ७॥

श्रीभगवान् बोले—[हे चतुरानन!] मेरा जो ज्ञान परम गोप्य है, विज्ञान (अनुभव) से युक्त है और भक्तिके सहित है उसको और उसके साधनको मैं कहता हूँ सुनो॥ १॥ मेरे जितने स्वरूप हैं, जिस प्रकार मेरी सत्ता है और जो मेरे रूप, गुण, कर्म हैं, मेरी कृपासे तुमको उसी प्रकार तत्त्वका विज्ञान हो॥ २॥

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ ३॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥ ४॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥ ५॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा॥ ६॥
एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना।
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्॥ ७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्वितीयस्कन्धे भगवद्ब्रह्मसंवादे चतुःश्लोकी भागवतं समाप्तम्।

सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था, मेरे अतिरिक्त जो स्थूल, सूक्ष्म या प्रकृति हैं—इनमेंसे कुछ भी न था, सृष्टिके पश्चात् भी मैं ही था, जो यह जगत् (दृश्यमान) है, यह भी मैं ही हूँ और प्रलयकालमें जो शेष रहता है वह मैं ही हूँ॥ ३॥ जिसके कारण आत्मामें वास्तविक अर्थके न रहते हुए भी उसकी प्रतीति हो और अर्थके रहते हुए भी उसकी प्रतीति न हो, उसीको मेरी माया जानो; जैसे आभास (एक चन्द्रमामें दो चन्द्रमाका भ्रमात्मक ज्ञान) और जैसे राहु (राहु जैसे ग्रहमण्डलोंमें स्थित होकर भी नहीं दीख पड़ता)॥ ४॥ जैसे पाँच महाभूत उच्चावच भौतिक पदार्थोंमें कार्य और कारणभावसे प्रविष्ट और अप्रविष्ट रहते हैं, उसी प्रकार मैं इन भौतिक पदार्थोंमें प्रविष्ट और अप्रविष्ट भी रहता हूँ। [इस प्रकार मेरी सत्ता है]॥ ५॥ आत्माके तत्त्व जिज्ञासुके लिये इतना ही जिज्ञास्य है, जो अन्वयव्यतिरेकसे सर्वत्र और सर्वदा रहे वही आत्मा है॥ ६॥ चित्तकी परम एकाग्रतासे इस मतका अनुष्ठान करें, कल्पकी विविध सृष्टियोंमें आपको कभी भी कर्तापनका अभिमान न होगा॥ ७॥

८२—श्रीमृत्युञ्जयस्तोत्रम्

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं
शिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युतानलसायकम्।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदशालयैरभिवन्दितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ १॥

पञ्चपादपपुष्पगन्धिपदाम्बुजद्वयशोभितं
भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम्।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशिनं भवमव्ययं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ २॥

कैलासके शिखरपर जिनका निवासगृह है, जिन्होंने मेरुगिरिका धनुष, नागराज वासुकिकी प्रत्यंचा और भगवान् विष्णुको अग्निमय बाण बनाकर तत्काल ही दैत्योंके तीनों पुरोंको दग्ध कर डाला था, सम्पूर्ण देवता जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?॥ १॥ मन्दार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन—इन पाँच दिव्य वृक्षोंके पुष्पोंसे सुगन्धित युगल चरणकमल जिनकी शोभा बढ़ाते हैं, जिन्होंने अपने ललाटवर्ती नेत्रसे प्रकट हुई आगकी ज्वालामें कामदेवके शरीरको भस्म कर डाला था, जिनका श्रीविग्रह सदा भस्मसे विभूषित रहता है, जो भव—सबकी उत्पत्तिके कारण होते हुए भी भव-संसारके नाशक हैं तथा जिनका कभी विनाश नहीं होता, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?॥ २॥

मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरं
पङ्कजासनपद्मलोचनपूजिताङ्घ्रिसरोरुहम्।
देवसिद्धतरङ्गिणीकरसिक्तशीतजटाधरं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ३॥

कुण्डलीकृतकुण्डलीश्वरकुण्डलं वृषवाहनं
नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम्।
अन्धकान्तकमाश्रितामरपादपं शमनान्तकं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ४॥

यक्षराजसखं भगाक्षिहरं भुजङ्गविभूषणं
शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम्।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ५॥

जो मतवाले गजराजके मुख्य चर्मकी चादर ओढ़े परम मनोहर जान पड़ते हैं, ब्रह्मा और विष्णु भी जिनके चरण-कमलोंकी पूजा करते हैं तथा जो देवताओं और सिद्धोंकी नदी गंगाकी तरंगोंसे भीगी हुई शीतल जटा धारण करते हैं उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ३॥ गेडुल मारे हुए सर्पराज जिनके कानोंमें कुण्डलका काम देते हैं, जो वृषभपर सवारी करते हैं, नारद आदि मुनीश्वर जिनके वैभवकी स्तुति करते हैं, जो समस्त भुवनोंके स्वामी, अन्धकासुरका नाश करनेवाले, आश्रितजनोंके लिये कल्पवृक्षके समान और यमराजको भी शान्त करनेवाले हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ४॥ जो यक्षराज कुबेरके सखा, भग देवताकी आँख फोड़नेवाले और सर्पोंके

भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं
दक्षयज्ञविनाशिनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम्।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं निखिलाघसंघनिबर्हणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ६॥
भक्तवत्सलमर्चतां निधिमक्षयं हरिदम्बरं
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनूपमम्।
भूमिवारिनभोहुताशनसोमपालितस्वाकृतिं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ७॥
विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं
संहरन्तमथ प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम्।

आभूषण धारण करनेवाले हैं, जिनके श्रीविग्रहके सुन्दर वामभागको गिरिराजकिशोरी उमाने सुशोभित कर रखा है, कालकूट विष पीनेके कारण जिनका कण्ठभाग नीले रंगका दिखायी देता है, जो एक हाथमें फरसा और दूसरेमें मृग लिये रहते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ५॥ जो जन्म-मरणके रोगसे ग्रस्त पुरुषोंके लिये औषधरूप हैं, समस्त आपत्तियोंका निवारण और दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाले हैं, सत्त्व आदि तीनों गुण जिनके स्वरूप हैं, जो तीन नेत्र धारण करते, भोग और मोक्षरूपी फल देते तथा सम्पूर्ण पापराशिका संहार करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ६॥ जो भक्तोंपर दया करनेवाले हैं, अपनी पूजा करनेवाले मनुष्योंके लिये अक्षय निधि होते हुए भी जो स्वयं दिगम्बर रहते हैं, जो सब भूतोंके स्वामी, परात्पर, अप्रमेय और उपमारहित हैं, पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और चन्द्रमाके द्वारा जिनका श्रीविग्रह सुरक्षित है, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ७॥ जो ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते, फिर

क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमावृतं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ८ ॥
रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ ९ ॥
कालकण्ठं कलामूर्तिं कालाग्निं कालनाशनम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १० ॥
नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निरुपद्रवम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ ११ ॥
वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १२ ॥

विष्णुरूपसे सबके पालनमें संलग्न रहते और अन्तमें सारे प्रपंचका संहार करते हैं, सम्पूर्ण लोकोंमें जिनका निवास है तथा जो गणेशजीके पार्षदोंसे घिरकर दिन-रात भाँति-भाँतिके खेल किया करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ८ ॥ 'रु' अर्थात् दुःखको दूर करनेके कारण जिन्हें रुद्र कहते हैं, जो जीवरूपी पशुओंका पालन करनेसे पशुपति, स्थिर होनेसे स्थाणु, गलेमें नीला चिह्न धारण करनेसे नीलकण्ठ और भगवती उमाके स्वामी होनेसे उमापति नाम धारण करते हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ ९ ॥ जिनके गलेमें काला दाग है, जो कलामूर्ति, कालाग्निस्वरूप और कालके नाशक हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ १० ॥ जिनका कण्ठ नील और नेत्र विकराल होते हुए भी जो अत्यन्त निर्मल और उपद्रवरहित हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ ११ ॥ जो वामदेव, महादेव, विश्वनाथ और जगद्गुरु नाम धारण करते हैं, उन

देवदेवं जगन्नाथं देवेशमृषभध्वजम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १३॥
अनन्तमव्ययं शान्तमक्षमालाधरं हरम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १४॥
आनन्दं परमं नित्यं कैवल्यपदकारणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १५॥
स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १६॥

इति श्रीपद्मपुराणान्तर्गत उत्तरखण्डे श्रीमृत्युञ्जयस्तोत्रं सम्पूर्णम्

(समाप्तेयं स्तोत्ररत्नावली)

भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?॥ १२॥ जो देवताओंके भी आराध्यदेव, जगत्के स्वामी और देवताओंपर भी शासन करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजापर वृषभका चिह्न बना हुआ है, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?॥ १३॥ जो अनन्त, अविकारी, शान्त, रुद्राक्षमालाधारी और सबके दुःखोंका हरण करनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ १४॥ जो परमानन्दस्वरूप, नित्य एवं कैवल्यपद—मोक्षकी प्राप्तिके कारण हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ १५॥ जो स्वर्ग और मोक्षके दाता तथा सृष्टि, पालन और संहारके कर्ता हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ १६॥